कवि-श्री माला

* गुजराती *

कवि

दयाराम

लेखक-सम्पादक

अनन्तराय रावल



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिन्दीनगर, वर्धा

• • •

प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९५२
मूल्य—रु २/-

• • •

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस
हिन्दीनगर, वर्धा

• • •

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य-कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए यथासम्भव उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कवियोंकी रचनाओंका चयन किया गया है उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके जो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२ से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य—इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२ के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अन्तर-सा पाया जाता है।

श्री अनन्तरायजी रावलने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने तथा उसे सम्पादित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। सम्पूर्ण सामग्रीको गुजरातीसे हिन्दीमें अनूदित करनेमें श्री भैरवलालजी जोशी एवं श्री रामअवधेशजी त्रिपाठीका अनन्य सहयोग मिला है। कुछ कविताओंके हिन्दी अनुवादमें श्री वासुदेव व्यासने भी सहायता की है। पुस्तकमें संकलित कवियोंके रेखाचित्र कलागुरु श्री रविशंकरजी रावलके मूल चित्रके आधारपर श्री रमण चित्रकारने तैयार किया है। ग्रंथकी आवरण डिजाइनको रूप देनेमें श्री डी. एल. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त कई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत ग्रंथ पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

कवि-श्री माला

गुजराती



दयाराम

गुजराती साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

गुजराती भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

आजके गुर्जर प्रान्तमें अपने पुराने नामोंको सुरक्षित रखनेवाले कच्छ-सौराष्ट्र तथा पुराने जमानेके विभिन्न कालोंमें— आनर्त, गुर्जरत्रा मण्डल, गुर्जर देश, अनूप, लाट' और गुजरात नामसे प्रख्यात प्रदेशोंका समावेश हो जाता है। करीब ९०० वर्ष पूर्व इस प्रदेशका नाम गुजरात हुआ। इस समयका गुजरात नाम तथा इसके पूर्वके गुर्जरत्रा मण्डल तथा गुर्जर नामोंका सम्बन्ध गुर्जर जातिसे रहा है। शक कुलकी यह जाति पाँचवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें छठी शताब्दीके प्रथम चरणके बीच भारतमें प्रविष्ट होकर दक्षिण पञ्जाबमें होकर राजपूतानेमें बस गई। इसके बाद नर्मदाके तटवर्ती प्रदेश एवं सौराष्ट्रमें फैली। ह्वेनसांगका देखा हुआ भिन्नमाल गुर्जर राज्य था। उत्तरी छोरमें मुसलमानोंके आक्रमणके कारण दसवीं शताब्दीके मध्य भागमें गुर्जरोंने 'भिन्नमाल'को छोड़कर वर्तमान उत्तर गुजरातमें अपना निवास आरम्भ किया। सोलंकी और वाघेला राजाओंके हाथों तथा उसके बाद मुसलमान शासकोंके हाथों पश्चिम और दक्षिणकी ओर जो सीमा विस्तार हुआ उसे ही वर्तमान गुजरात माना गया है।

सभी भाषाओंका नाम जिस तरह प्रदेशवाची होता है, ठीक उसी तरह गुजरातकी भाषा गुजराती है। उत्तर और मध्य भारतकी प्रादेशिक भाषाओंके समान यह भाषा भी भारतीय आर्य (Indo Aryan) भाषाकी संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भूमिकाओंके बादकी भूमिका रूप भाषा है। इसका समीपवर्ती पूर्व रूप पश्चिम भारतीय या शौरसेनी अपभ्रंश है, जो कि व्रजभाषा और राजस्थानीका भी मूल है। ग्यारहवीं शताब्दीसे चौदहवीं शताब्दी तकका काल गुजराती भाषाके उद्भवका काल पन्द्रहवीं शताब्दी प्रारम्भ काल तथा सोलहवीं शताब्दी मध्यकालीन गुजरातीका काल कहा जाता है। १७ वीं शताब्दीसे गुजरातीकी अर्वाचीन भूमिका शुरू होती है।

दूसरी भाषाओंका प्रभाव

इस प्रकार गुजराती भाषाका अपभ्रंश प्राकृत और संस्कृतके साथ सम्बन्ध होनेके कारण उसके शब्द-भण्डारमें तत्सम (संस्कृतके समान) और तद्भव (संस्कृतसे निष्पन्न) शब्द अधिक हों यह स्वाभाविक ही है। तद्भव शब्दोंके समान ही इसमें प्राकृत अपभ्रंश मूल प्रादेशिक बस्ती तथा पूर्वजोंके समान बाहरसे आनेवाली जातियोंके परम्परागत देशज शब्दोंका भी सम्मिश्रण है। गुजराती भाषाके शब्द भण्डारमें अरबी-फारसी शब्द भी कम नहीं है। गुजरात-सौराष्ट्रके समुद्र तटके साथ अरब-व्यापारियों और मल्लाहोंका सम्बन्ध बहुत पुराना है अर्थात् मुहम्मद गजनी द्वारा सोमनाथपर किए गए आक्रमणके पहलेका है। १२९७ ई में अलाउद्दीन खिलजीने गुजरातको जीत लिया। उसके बाद ४२० वर्ष तक गुजरातमें मुसलमानी शासन रहा और उस शासन कालमें फारसी भाषा शासन-सञ्चालनकी भाषा रही। इसका प्रभाव गुजराती भाषापर भी पड़ा। 'खबर' 'जरूर' 'दुनिया' 'मकान' 'मजा' जैसे कई अरबी शब्द और 'हवा' 'जमीन' 'दरिया' 'गरीब' तदबीर आदि कई फारसी शब्द गुजराती भाषाके अपने ही शब्द बन गए। गुजराती भाषाका उद्भव और विकास मुसलमानी शासन कालमें ही हुआ और गुजराती भाषामें उसके प्रारम्भ कालसे ही ऐसे शब्दोंका प्रयोग होने लगा है। गुजरातीने अन्य विदेशी शब्द भी अपनाए हैं। पुर्तगीज संस्थान दीव और दमण गुजरातमें ही थे। उसके कारण पगार पलटण बटाटा आपूस चावी जैसे कुछ पुर्तगीज शब्द भी गुजराती भाषामें आ मिले हैं। और ये शब्द आज भी व्यवहारमें हैं। अंग्रेजी शासनके कारण अंग्रेजी भाषा राजभाषा बनी और आज तक वह शिक्षाका माध्यम रही। इसके परिणाम-स्वरूप स्कूल स्टेशन टेबल बैंक ऑफिस कोर्ट आदि अनेक अंग्रेजी शब्दोंने भी गुजराती भाषामें अपना स्थान बना लिया है। गुजरातके इतिहासने भी गुजराती भाषापर यह असर डाला है।

गुजराती भाषा-साहित्यका यह सौभाग्य है कि उसके पास बहुत-सी हस्तलिखित सामग्री है जो गुजराती भाषाके प्रत्येक शतकके क्रमिक विकासका इतिहासका काम देती है और मध्यकालमें विकसित साहित्य-प्रकारोंके अनेक नमूने प्रस्तुत करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुजराती भाषाके विकासके साथ-साथ गुजरातीमें अनेक प्रकारके साहित्यका भी सर्जन हुआ है। ईसाकी बारहवीं शताब्दीसे लिखित साहित्यिक कृतियोंका मुद्रित स्वरूपमें प्रकाशन गत शताब्दीमें होने लगा। तब तक के कालके साहित्यको मध्यकालीन साहित्य और उसके बादके साहित्यको अर्वाचीन साहित्यका कहा जाता है। इस तरह गुजराती साहित्य दो भागोंमें बँट जाता है।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य अधिकतर पद्यमें ही लिखा गया है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उस समयमें गद्य बिलकुल लिखा ही नहीं गया। संस्कृत प्राकृत धर्म ग्रन्थोंके अनुवाद बालावबोध और टबा में गद्य है। इसी तरह स्वतन्त्र दृष्टान्त कथाओंमें (पद्यके साथ गद्यमें भी) पृथ्वीचन्द्र चरित्र पंचदंड सिंहासन बत्तीसी आदि कहानियाँ गद्यमें लिखी गई हैं परन्तु उसका परिमाण पद्यकी तुलनामें कम रहा है। दुनियाके अधिकांश साहित्योंमें कविता ही प्रथम लिखी गई है, वैसे ही गुजरातीका प्रारम्भ भी कवितासे हुआ है। उसका एक कारण संस्कृत अपभ्रंश आदि साहित्योंकी परम्परा भी है। जब गुजरातमें मुद्रण यन्त्र नहीं था और साहित्य कण्ठोपकण्ठ स्मरण रखा जाता था तब कण्ठस्थ करनेमें गद्यकी अपेक्षा पद्य ही अधिक सुविधाजनक होता था। यह उस समयकी परिस्थितिका दूसरा कारण था। इसी कारणसे मध्यकालीन गुजराती साहित्यमें पद्यमें भी वर्णिक वृत्तोंकी अपेक्षा मात्रिक वृत्त एवं लय युक्त रचनाओंका सर्जन अधिक मात्रामें हुआ है।

धर्म-साहित्यका केन्द्र-बिन्दु

मध्यकालीन साहित्यकी मुख्य विशिष्टता यह है कि उसकी विषय-परिधि अर्वाचीनकी तुलनामें बहुत लघु है और वह धर्मसे व्याप्त है। पन्द्रहवें शतकके पूर्वका तथा उसके बाद जैन साधुओं द्वारा लिखा गया साहित्य धार्मिक ही है। उनकी धर्म-कथाएँ रास-रासा प्रबन्ध चरित्र बालावबोध और कथाओंके अलावा उनके 'शृंगार प्रधान फागुओं और पृथ्वीचन्द्र चरित्र' जैसे साहित्यिक शैलीवाले वाग्विलास तथा नल दमयन्ती रास-जैसी रसात्मक पुरानी कथाएँ और शीलवती ना रास जैसी कहानियाँ भी अन्ततोगत्वा धर्मसे ही अनुप्राणित हैं। नेमिनाथ बाहुबलि और स्थूलिभद्र-जैसे धार्मिक पुरुषोंके तथा विमल मन्त्री समरसिंह और वस्तुपाल-जैसे जैन शासनके आदर्श सेवक जैसे श्रावकोंके चरित्र लिखनेमें जैन साधुओंकी धर्म-निष्ठा ही दिखाई देती है। उस समय जैन धर्मके

सिवाय और आज भी सुप्रतिष्ठित धर्म है हिन्दू धर्म। हिन्दू धर्मकी महत्वकी विशेषता यह है कि अधिकार भेद प्रकृति भेदके अनुसार मूर्ति पूजासे लेकर निराकार निर्गुण ब्रह्मकी उपासना तकके तथा कर्म भक्ति ज्ञान और योग-जैसे विविध साधनोंको इसमें उदार भावसे स्वीकार किया गया है। हमारे यहां ईश्वरकी उपासना रामके रूपमें गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्णके रूपमें शिवके रूपमें तथा शक्तिके रूपमें भी गई है। जीव-जगत और ईश्वरका अद्वैत प्रतिपादित करनेवाला वेदान्त सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित है। मध्यकालीन जैनेतर गुजराती कवितापर इन सबका प्रभाव पड़ा है। उनमें नरसिंह मीरां और दयारामके प्रेम लक्षणा भक्तिके उत्तम पद हैं। भक्त भगवान और पतिव्रताका गौरव गानेवाले भालण प्रेमानन्द आदिके आख्यान हैं। शिव-शक्तिका साहित्य है। सप्तशतीके अनुवाद और वल्लभके गरबा भी शिव-शक्तिकी कविता है। नरसिंह अखा नरहरि, प्रीतम आदि की वेदान्ती ज्ञानमार्गी कविताका प्रवाह है और धीरा कबीर मार्गी और स्वामीनारायण सम्प्रदायके सन्तोंकी भजन-वाणी भी है।

मध्यकालमें पारसियों और मुसलमानोंके आगमनके साथ जरथोस्ती और इस्लाम धर्मका प्रवेश भी गुजरातमें हुआ। इन धर्मके अनुयायी भी मौन नहीं बैठे रहे। उन्होंने मध्यकालमें जो कुछ लिखा है वह सब धर्म-भावनासे प्रेरित होकर ही लिखा है। उस समय पारसियोंने अपने धर्म-ग्रन्थोंका संस्कृतमें और फिर संस्कृतसे तत्कालीन गुजरातीमें भाषान्तर किया है। उसी तरह पीर सतागर और पीर इमामशाह जैसे इस्लाम उपदेशकोंके प्रभावसे हिन्दू धर्मको छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार करनेवाली खोजा मतिया तथा बोरा जैसी जातियोंने भी अपनी धार्मिक कविताएं लिखी थीं। उनके कवियोंने जो पद तथा भजन लिखे उनमें कबीर, नानककी वाणीकी ध्वनि विद्यमान है। इस्लाम और मुर्शिद (गुरु पीर) की महिमा गाई गई है। वे कवि शब्दके वाड़ोपामें हिन्दू भजन-वाणीकी ही प्रणालीका अनुसरण करते हैं। ईसाई धर्मने भी १९ वें शताब्दी इसी शताब्दीमें गुजराती भाषामें 'बाइबिल' दी है।

मध्यकालीन गुजराती साहित्यको धर्मकी प्रतिष्ठा करना ही अधिक पसन्द आया है। और इसका कारण राजनैतिक और सामाजिक भूमिका ही है। ११ वीं शताब्दीसे १३ वीं शताब्दी तकके कालको गुजराती भाषा और साहित्यका प्रारम्भ काल माना जाता है। यह काल सोलंकी और वाघेलाओंका शासन-काल था। इस कालमें गुजरात वीरता व्यापार, साहित्य और कलाके क्षेत्रमें सम्पन्न था। इस समयके सबसे पुराने साहित्य सिद्धहेम के अपभ्रंशके दोहोंमें अभिव्यक्त वीरता देश-भक्ति और प्रणय-भावना तत्कालीन जनताके पराक्रम और सम्पन्नताका प्रतीक है। ई स १२९७ में अलाउद्दीनकी सेनाने पाटणपर अधिकार कर लिया तबसे गुजरातकी राजनैतिक स्वतंत्रता नष्ट हो गई। सौ वर्ष तक दिल्लीके

सूबेदारोंने और उसके बाद गुजरातके स्वतन्त्र सुलतानोंने और उसके पश्चात् मुगल शासकोंके प्रतिनिधियोंने गुजरातपर हुकूमत की। मुसलमान शासकोंमें कुछ शासक धर्मान्ध थे। मन्दिरोंकी तोड़-फोड़ धर्म-परिवर्तन और अपनी सम्पत्तिकी लूटसे बचनेके लिए हिन्दू बस्तियाँ प्रदेशके भीतरी हिस्सोंकी ओर हटने लगीं। उस कालमें स्वतन्त्रता प्राप्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी और जीवन संग्राम इतना कठिन नहीं था कि शान्तिसे जीवन निर्वाह न हो सके। अतः पैतृक व्यवसाय करते हुए, शान्ति और सन्तोषकी जिन्दगी व्यतीत करनेवाले लोगोंमें धर्म पालनकी आकांक्षा जाग्रत होती थी। लोगोंने अन्य धर्मके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेकी स्वाभाविक प्रेरणासे कछुएकी तरह अपनेको संकुचित करके जाति और महाजनोंके वर्तुलोंमें छिपकर अपने व्रत-नियम कथा-श्रवण धर्म-पालन तथा पर्वोत्सव मनाने तथा तीर्थ-यात्रा करनेमें ही अपना श्रेय माना था और आचार-विचारकी परम्परागत प्रणालियोंको जारी रखकर लोगोंने अपने भीतरी चैतन्यको कायम रखा। मुसलमान शासकोंने भी राजनैतिक प्रत्याक्रमण न करनेवाली शान्तिप्रिय प्रजाको अपने ढंगसे रहने देना ठीक किया था। ११ वें शतकमें जोर पकड़नेवाले और सोलहवें शतकमें सारे देशमें फैल जानेवाले भक्ति आन्दोलनने तथा समस्त देशमें तत्कालीन सन्तों और भक्तोंकी प्रकट होनेवाली तेजस्वी परम्पराने भी धर्मको और उसके साहित्यको प्रेरक बल माना था।

संस्कार-प्रधान-साहित्य

इस प्रकारकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितिमें हिन्दू राजाओं द्वारा संस्कृतको जो अब तक राज्याश्रय प्राप्त था वह बन्द हो गया। साहित्य लोकाश्रयी बना और इससे लोकभाषा साहित्यका माध्यम बनी। जैन साधुओंने श्रावकोंके लिए साम्प्रदायिक साहित्यका बड़े उत्साहके साथ सर्जन किया और उसके लिए उन्होंने तत्कालीन लोक-भाषाका आश्रय लिया। वैष्णव भक्ति मार्गके कारण भागवत रामायण तथा महाभारत की लोकप्रियता बढ़ती गई। इसके कारण देशी भाषाओंमें उनके अनुवादोंकी और कथा-श्रवणकी माँग बढ़ती गई। ऐसी परिस्थितिमें कथाकारों और पौराणिकोंने संस्कृतकी कथा-पोथियोंको अपने हाथोंमें रखा और उनको कथा गुजराती भाषा द्वारा जनताको सुनाई। आख्यानकारोंने रामायण महाभारत और भागवत से सामग्री ली और स्वतन्त्र व्याख्यानोंकी रचना की। ऐसे गाए जानेवाले आख्यानों और व्याख्यानोंका जनतामें काफी प्रचार किया गया। इस प्रकार इन लोगोंने जनताके धार्मिक संस्कारोंको जागरित रखा और उन्हें दृढ़ बनाया। नरसिंह महेता और मीरा जैसे सन्त भी अपने पदों द्वारा अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करते थे और लोक मानसको भक्ति-रससे निरन्तर सींचते रहते थे। मध्यकालीन गुजराती कवियोंने

विकास और आज भी सुप्रतिष्ठित धर्म है हिन्दू धर्म। हिन्दू धर्मकी महत्ती विशेषता यह है कि अधिकार भेद प्रकृति-भेदके अनुसार मूर्ति पूजासे शुरू करके निराकार निर्गुण ब्रह्मकी उपासना तकके तथा कर्म भक्ति ज्ञान और योग जैसे विविध साधनोंका इसमें उदार भावसे स्वीकार किया गया है। हमारे यहाँ ईश्वरकी उपासना रामके रूपमें गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्णके रूपमें शिवके रूपमें तथा शक्तिके रूपमें की गई है। जीव-जगत और ईश्वरका अद्वैत प्रतिपादित करनेवाला वेदान्त सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित है। मध्यकालीन जैनेतर गुजराती कविता-पर इसका प्रभाव पड़ा है। उनमें नरसिंह, मीरां और दयारामके प्रेम-लक्षणा भक्तिके उत्तम पद हैं भक्त भगवान और भक्तिका गौरव गानेवाले भालण प्रेमानन्द आदिके आख्यान हैं। शिव-भक्तिका साहित्य है। सप्तशतीके अनुवाद और वल्लभके गरबा भी शक्ति भक्तिकी कविता है नरसिंह अखा भर्तृहरि, प्रीतम आदि की वेदान्ती ज्ञानमार्गी कविताका प्रवाह है और गोरख कबीर मार्गी और स्वामीनारायण सम्प्रदायके सन्तोंकी भजन-वाणी भी है।

मध्यकालमें पारसियों और मुसलमानोंके आगमनके साथ जरथोस्ती और इस्लाम धर्मका प्रवेश भी गुजरातमें हुआ। इस धर्मके अनुयायी भी मौन नहीं बैठे रहे। उन्होंने मध्यकालमें जो कुछ किया है वह सब धर्म-भावनासे प्रेरित होकर ही किया है। इस समय पारसियोंने अपने धर्म-ग्रन्थोंका संस्कृतमें और फिर उसपरसे तत्कालीन गुजरातीमें भाषान्तर किया है। उसी तरह नूर सतागर और पीरसदरुद्दीन जैसे इस्लाम-उपदेशकोंके प्रभावसे हिन्दू धर्मको छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार करनेवाली खोजा मतिया तथा मोमिन जैसी जातियोंने भी अपनी धार्मिक कविताएँ लिखी थीं। उनके कवियोंने जो पद तथा भजन लिखे उनमें कबीर, नानककी वाणीकी ध्वनि विद्यमान है इस्लाम और गुरुपीर (गुरु पीर) की महिमा गाई गई है। ये कवि [illegible] आश्रयमें हिन्दू भजन-वाणीकी ही प्रणालीका अनुकरण करते हैं। ईसाई धर्मने भी ११ वें शतककी दूसरी पचासीमें गुजराती भाषामें 'बाइबिल' दी है।

मध्यकालीन गुजराती साहित्यको धर्मकी प्रतिष्ठा करना ही अधिक पसन्द आया है। और उसका कारण राजनैतिक और सामाजिक भूमिका ही है। ११ वीं शताब्दीसे ११ वीं शताब्दी तकके कालको गुजराती भाषा और साहित्यका प्रारम्भ काल माना जाता है। यह काल सोलंकी और वाघेलाओंका शासन-काल था। इस कालमें गुजरात वीरता व्यापार, साहित्य और कलाके बारेमें अत्यन्त उन्नत था। इस समयके सबसे पुराने साहित्य सिद्धहेम के अपभ्रंशके दोहोंमें अभिव्यक्त वीरता देश-भक्ति और प्रणय-रसिकता तत्कालीन जनताके पराक्रम और उपासनाका प्रतीक है। ई. स. १२९७ में अलाउद्दीनकी सेनाने पाटणपर अधिकार कर लिया तबसे गुजरातकी राजनैतिक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। सौ वर्ष तक दिल्लीके

सूबेदारोंने और उसके बाद गुजरातके स्वतन्त्र सुलतानोंने और उसके पश्चात् मुगल शासकोंके प्रतिनिधियोंने गुजरातपर हुकूमत की। मुसलमान शासकोंमें कुछ शासक धर्मान्ध थे। मन्दिरोंकी तोड़-फोड़, धर्म परिवर्तन और अपनी सम्पत्तिकी लूटसे बचनेके लिए हिन्दू बस्तियाँ प्रदेशके भीतरी हिस्सोंकी ओर हटने लगीं। उस कालमें स्वतन्त्रता प्राप्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी और जीवन संग्राम इतना कठिन नहीं था कि शान्तिसे जीवन निर्वाह न हो सके। अतः पैतृक व्यवसाय करते हुए, शान्ति और सन्तोषकी जिन्दगी व्यतीत करनेवाले लोगोंमें धर्म पालनकी आकांक्षा जाग्रत होती थी। लोगोंने अन्य धर्मके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेकी स्वाभाविक प्रेरणासे कछुएकी तरह अपनेको संकुचित करके जाति और महाजनोंके बन्धनोंमें छिपकर अपने व्रत-नियम, कथा-श्रवण, धर्म-पालन तथा पर्वोत्सव मनाने तथा तीर्थ-यात्रा करनेमें ही अपना क्षेम माना था और आचार-विचारकी परम्परागत प्रणालियोंको जारी रखकर लोगोंने अपने भीतरी चैतन्यको कायम रखा। मुसलमान शासकोंने भी राजनैतिक सत्ताक्रमण न करनेवाली शान्तिप्रिय प्रजाको अपने ढंगसे रहने देना सीख लिया था। ११ वें शतकसे जोर पकड़नेवाले और सोलहवें शतकमें सारे देशमें फैल जानेवाले भक्ति आन्दोलनने तथा समस्त देशमें तत्कालीन सन्तों और भक्तोंकी प्रकट होनेवाली तेजस्वी परम्पराने भी धर्मको और उसके साहित्यको प्रेरक बल दिया था।

संस्कार-प्रदान-साहित्य

इस प्रकारकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितिमें हिन्दू राजाओं द्वारा संस्कृतको जो अब तक राज्याश्रय प्राप्त था वह बन्द हो गया। साहित्य लोकाश्रयी बना और इसमें लोकभाषा साहित्यका माध्यम बनी। जैन साधुओंने श्रावकोंके लिए साम्प्रदायिक साहित्यका बड़े उत्साहके साथ सर्जन किया और उसके लिए उन्होंने तत्कालीन लोकभाषाका आश्रय लिया। वैष्णव भक्ति मार्गके कारण भागवत, रामायण तथा महाभारतकी लोकप्रियता बढ़ती गई। इसके कारण ऐसी भाषाओंमें उनके अनुवादोंकी और कथा-श्रवणकी माँग बढ़ती गई। ऐसी परिस्थितिमें कथाकारों और पौराणिकोंने संस्कृतकी कथा-पोथियोंको अपने हाथमें रखा और उसकी कथा गुजराती भाषा द्वारा जनताको सुनाई। आख्यानकारोंने रामायण, महाभारत और भागवत से सामग्री ली और स्वतन्त्र आख्यानोंकी रचना की। ऐसे गाए जानेवाले आख्यानों और व्याख्यानोंका जनतामें काफी प्रचार किया गया। इस प्रकार इन लोगोंने जनताके धार्मिक संस्कारोंको जाग्रत रखा और उन्हें दृढ़ बनाया। नरसिंह महेता और मीरा जैसे सन्त भी अपने पदों द्वारा अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करते थे और लोकमानसको भक्ति-रससे निरन्तर सींचते रहते थे। मध्यकालीन गुजराती कवितामें

इस प्रकार प्रजाके धार्मिक संस्कार-संरक्षकोंका काम किया। यह ठीक है कि मध्य कालीन गुजराती साहित्य अधिकांशतया धार्मिक भावनाओंसे प्रेरित होकर ही लिखा गया था परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि लौकिक रसोंकी उस कालमें बिलकुल चर्चा ही नहीं हुई। नर्मदके पूर्वकालका प्रथम लक्षण परलोकके प्रति प्रेम और इहलोकके प्रति अरुचि है ऐसा कहते समय वीर, करुण और शृंगार रससे सरोबार हेमचन्द्रोल्लिखित अपभ्रंश दोहे वसन्त विलास जैसा यौवनका उल्लास व्यक्त करनेवाला शृंगारिक फागु काव्य सन्देश रासक जैसी एक मुसलमान कविकी विप्रलम्भ शृंगारकी मेघदूतानुसारी रचना रणमल्ल छन्द और 'कान्हड़दे प्रबन्ध' जैसे क्षत्रिय वीरोंके पराक्रम गानेवाले ऐतिहासिक वीर काव्य भालण कृत कादम्बरी का सरस पद्यानुवाद और असाइत नरपति गणपति माधव और शामल जैसे कई कवियोंका मानव प्रेम पराक्रम कठिनाई भलाई-बुराई आदि वर्णन करनेवाली अद्भुत रम्य कहानियाँ इस समय विशाल लौकिक साहित्यको भुलाया नहीं जा सकता।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य अधिकांशतया पद्यबद्ध होनेके कारण वह आजकी तरह पद्य साहित्यकी भाँति साहित्यके स्वरूपोंकी विविधताको व्यक्त न कर पाये यह स्वाभाविक ही है। फिर भी उसके द्वारा रचित विभिन्न प्रकारकी काव्य विविधता कम नहीं है। नरसिंह आदि भक्तिमार्गी वैष्णव कवियोंके उदयके पूर्वके ढाई शतकको अपनी स्फूर्तिमयी प्रवृत्तिसे भर देनेवाली जैन कविताने जिन काव्य-साहित्य-प्रकारोंका सर्जन किया है उनमें रास फागु बारहमासी कक्का विवाहलु प्रबन्ध और वार्ता मुख्य हैं। इनके अलावा स्तवनों और सज्झायोंकी रचनाएँ भी काफी संख्यामें हुई हैं।

फागु और रास

रास यानी गेय काव्य-प्रबन्ध। उसकी रचना प्रथम तो ऊर्मि काव्य-जैसी थी। परन्तु कालान्तरमें यह रचना आख्यान पद्धतिकी बन गई है। एक ही छन्दमें सारी रचना लिखनेकी अपेक्षा कड़वे तथा भाषा नामक छोटे खण्डोंमें रास विभक्त होते थे और विभिन्न छन्दोंमें लिखे जाते थे। एक छन्दका विशेष नाम मालामेल जातियोंका सामान्य नाम और नर्तकियों तथा युवकों द्वारा ताल और लयमें खेले जानेवाले गेय उपरूपक इन तीनों अर्थोंमें विभिन्न समयोंमें रचित 'रासके कारणसे रास' शब्द आया ऐसा माना जाता है। उपरूपकके रूपमें श्रीकृष्णकी रास क्रीड़ावाला रूप ही यह प्रकार हो तो ताली और डांडियेके तालवाले आजके गुजराती गरबा गरबियोंके प्रकारका वह पूर्वज ही है। इस रास नृत्यमें वह रचना रास है कि जिसमें जिसका गान हो। इस प्रकार रास शब्दका उपयोग काव्य प्रकारके लिए हुआ है। इस रचनाके प्रकारमें धार्मिक पुरुषों और आदर्श श्रावकोंके चरित्रों तीर्थ-यात्राओं स्तवनों और उपदेशोंका तथा बादमें कहानियोंकी रचना

होनेसे गुजरातको मध्यकालमें काफी जैन रास साहित्य प्राप्त हुआ है। रासका महत्त्व जैनी आध्यात्मिक रूपमें और उसके जनक नहीं तो प्रेरक के रूपमें अधिक है।

फाग-फागु भी रासका ही एक प्रकार है। विस्तारमें यह छोटा है। इसलिए तथा उसका विषय नायक-नायिकाका शृंगार होनेके कारण उसमें रस तत्व और रसाभिव्यक्तिका उसमें अच्छा प्रकाश है। उसमें वसन्त ऋतुकी प्रकृति-सौन्दर्यका वर्णन भी किया गया है। अतः उसे 'ऋतु काव्य' भी कहा जा सकता है। वसन्त वैभवको उद्दीपन विभाव बनाकर प्रेमी युगलके विप्रलम्भ-सम्भोग उभय शृंगारका निरूपण उसमें होता है। अतः उसे शृंगार काव्यका या प्रणय काव्य भी कहा जाता है। जैन साधुओं द्वारा नेमिनाथ और स्थूलिभद्र पर लिखे गए फागु स्वभावतया आरम्भके शृंगारकी पूर्वभूमि तप और उपशममें करते हैं। जैनेतर कवियोंने भी फागु काव्य लिखे हैं जिसमें श्रीकृष्ण विषयक रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रवाहित है और वसन्त विलास जैसे फागुमें शुद्ध शृंगार वर्णित है। फागु लिखनेवाले जैन और जैनेतर यह बताते हैं कि मध्यकालके कवि जन साहित्यकी सरसताका विनियोग धर्मके लिए किस तरह करते थे।

'बारहमासी' यह ऋतु काव्य तथा प्रणय मंडित काव्यका ही एक प्रकार है। उसमें बारह मास यानी सभी ऋतुओंका वर्णन आता है। वर्णन विरहिणी नायिका करती है, अतः उसमें विप्रलम्भ शृंगारका तत्व भी होता है। नेमिनाथ चतुष्पदिका (ई सन् १२७४) गुजराती भाषाका प्रथम बारहमासी काव्य कहा जाता है। उसके पश्चात् जैनेतर कवियोंने उस काव्य प्रकारको काफी विकसित किया है। उनमेंसे कई रचनाओंमें राधा या गोपियोंके कृष्ण विरहके बारह मासका वर्णन है। नरसिंह प्रेमानन्द रत्नेश्वर रत्ना वामन प्रेमसखी गिरधर और दयारामने ऐसे काव्य लिखे हैं। उनके उपरान्त मिलनीके राम सीताके गुरुके और विमानके भी बारहमासी काव्य लिखे गए हैं।

कक्का (बाराखड़ी) में "क" से "ज्ञ" तकके अक्षरोंपर चौपाई-दूहेमें सुभाषित जैसी पंक्तियाँ लिखी जाती थी। जैन साधुओं द्वारा उसका प्रारम्भ हुआ और जैनेतर कवियोंने उसे काफी विकसित किया। धीरा भीखम और जीवणदासके ज्ञान कक्का तथा चंद्रहासाख्यान (प्रेमानन्द) का कक्का उसके उदाहरण स्वरूप हैं। विवाहलु जैन साधुओं द्वारा लिखे गए गेय तथा वर्णनात्मक एवं चरित्रात्मक काव्य हैं। दीक्षा लेनेवाले तपस्वीका संयम सुन्दरीके साथ हुए विवाहका उसमें वर्णन किया गया है। चर्चरी और धवल (धोल) गेय पदोंके प्रकार हैं। इन सबमें जैन कवियोंने प्रबन्ध अधिक लिखे हैं। प्रबन्ध यानी ऐतिहासिक और चरित्रात्मक वस्तुवाला आख्यान जैसोका कथात्मक काव्य। शुद्ध इतिहासके रूपमें इन प्रबन्धोंका महत्व किंवदन्तियां तथा कवि कल्पनाके कारण कम है। परन्तु समकालीन लोक जीवनकी उसमें झाँकी होती है। कुमारपाल विमल मन्त्री

तथा वस्तुपाल, तेजपालके चरित्र मध्यकालमें जैन साधुओंके लिए एक प्रिय काव्य विषय थे। रास चरित और प्रबन्ध काव्योंमें कोई बहुत बड़ा भेद न रहनेके कारण बादमें ये तीनों नाम परस्पर एक दूसरेके लिए प्रयुक्त हुए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जैन साहित्यमें आख्यान पद्धतिके काव्योंके लिए "रास" शब्द एक प्रचलित नाम था।

कहानी साहित्य

उपर्युक्त काव्य प्रकारोंकी अपेक्षा मध्यकालमें कहानी साहित्य अधिक लोकप्रिय बना है। उसके सर्जन और स्वरूप निर्माणमें जैनों और जैनेतर कवियोंका समान योग रहा है। अधिकांश कहानियाँ पद्यमें दूहा-चौपाई छन्दोंमें लिखी जाती थी। और बीचमें कहीं-कहीं मार्मिक परिस्थितियोंके निरूपणके प्रसंगपर पद भी रखे जाते थे। मध्यकालीन कहानियोंमें वस्तु और संविभागकी दृष्टिसे कुछ कहानियाँ स्वयं सम्पूर्ण और लम्बी कहानियाँ थी उदाहरणस्वरूप 'हंसावली' 'सदयवत्सकथा' 'माधवानल' 'चउपई' 'नन्दबत्तीसी' 'मदनमोहना' इत्यादि। और कुछ कहानियाँ एक ही सूत्रमें गूँथी गई कहानी मालाएँ थीं। 'सिंहासन बत्तीसी' 'वैताल पच्चीसी' 'पञ्चदण्ड' 'सूडाबहोतरी' इत्यादि उसके उदाहरण हैं। सम्पूर्ण लम्बी कहानियोंमें भी उपकथाओं और दृष्टान्त कथाओंका समावेश होता था। कई बार नायक-नायिकाके दुःखों और साहसोंसे ही विभिन्न कहानियोंमें रस उत्पन्न किया जाता था। कहानियोंमें नीति व्यवहार चतुरता सदाचार इत्यादिका उपदेश देनेवाले सुभाषित और बुद्धि विनोदपरक समस्याएँ मध्यकालीन कहानियोंके ज्ञान और मनोरञ्जनको बढ़ाती थीं। विषयकी दृष्टिसे देखा जाए तो मध्यकालकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम कथाएँ थी उदाहरणस्वरूप– हंसाउली माधवानल-कामकन्दला 'माधवानल' 'कामावती' इत्यादि। नायक-नायिकाके प्रेमोदयके लिए चमत्कार स्वप्न समस्या इत्यादि द्वारा कौतुकपूर्ण परिस्थितिकी कल्पना की जाती थी और प्रेमोदयके बाद विघ्नो और मुसीबतों द्वारा उनके विरहका निरूपण करके अन्तमें मिलन सुखसे कहानियोंकी पूर्णाहुति होती थी। विरह और आपत्तिके बीचके समयका उपयोग उनके परिभ्रमण साहस चतुराई, परोपकार इत्यादिके लिए तथा विप्रलम्भ शृंगारके निरूपण द्वारा उनके प्रेमकी उत्कटताकी अभिव्यक्तिके लिए होता था। शृंगारके बाद वीर और अद्भुत ये मध्यकालीन कहानीके प्रिय रस थे। और विक्रमके पर दुःख भञ्जक पराक्रमोंकी कहानियोंमें इन दोनों रसोंका अधिक उपयोग हुआ है। अद्भुत-रसका उपयोग खुलकर होता था। शकुन अपशकुन मन्त्र-तन्त्र जादू-टोना कामी का जारा स्वप्न इन सबके सम्बन्धमें तत्कालीन लोक जीवनमें प्रचलित मान्यताओं का भी इन कहानियोंमें वर्णन हुआ है। इन कहानियोंके अधिकांश पुरानी कहानी परम्परासे लिए जाते थे। अतः कथाकी घटनाओंमें बहुधा समानता है।

केवल कवि प्रतिभा और निरूपण शैलीको लेकर ही कहानियोंमें विशेषता दिखाई देती है। परन्तु मध्यकालीन कहानीकार, कवि अपनी प्रतिभाको अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त नहीं कर सके हैं। उनका प्रधान लक्ष्य कविता नहीं कहानी था। मध्यकालमें ऐसा कहानी साहित्य १४ वें शतकसे १८ वें शतक तक जैनों तथा जैनेतरों द्वारा अधिक पैमानेमें लिखा गया है। जन-हृदयमें स्थित सनातन जिज्ञासा अद्भुत रसिक कल्पना कथाके कहानी-रसका पान कराकर, पात्रोंके प्रेम साहस इत्यादिके साथ समरसताका अनुभव करवाकर, लोगोंकी क्रिया अप्रयुक्त रस-पराक्रम-भावनाको कल्पना मार्गमें मोक्ष दिखाकर, उनके जीवनमें लगातार रस-सिञ्चन करनेकी सेवा मध्यकालीन कहानीकारोंने कम नहीं की है।

पौराणिक कथावस्तु

मध्यकालीन गुजराती साहित्यका ऐसा ही दूसरा काव्य-प्रकार आख्यान है। ऐसा लगता है जैनोंके रास-रासा उसके लिए प्रेरणा रूप बने होंगे। ब्राह्मण धर्मने पुराणोंमेंसे भगवद् लीला और भक्तोंकी चरित्र कथाओंके लिए उसका उपयोग किया है। जैन रासाओंकी तरह गेय रागोंमें अर्थात् देशियोंमें लिखे गए और कडवोंमें विभाजित इन आख्यानोंकी कथावस्तु मुख्यतः रामायण महाभारत भागवत् आदि ग्रन्थोंसे और कभी-कभी नरसिंह मेहता जैसे लोक विख्यात भक्तोंके जीवनसे ली गई है। वस्तु और पात्र दोनों विख्यात थे ही। अतः आख्यानकारोंको उसकी अभिव्यक्तिमें ही अपनी विशेषता बतानी थी। प्रेमानन्दने 'रणयज्ञ' में रावण कुम्भकर्णको भक्तके रूपमें उपस्थित किया है तो 'सुदामा-चरित्र' में सुदामाका एक सामान्य ब्राह्मण और अभिमन्यु-आख्यान में श्रीकृष्णको खलनायकके रूपमें वर्णित किया गया है। इसीलिए मध्यकालीन आख्यान स्वतन्त्र रचनाओंसे कम न थे। कैसकाने वस्तुका ढाँचा ही पुराणोंसे ही लिया है। उसमें रक्त मांस और प्राण अपने जमानेके डाले थे। इससे पौराणिक पात्र आख्यानकारोंके हाथों सजीव लोकमान्य गुजराती पात्र बन गए हैं।

१५ वें शतकसे आरम्भ हुए इस काव्य-प्रकारने उसके बादके दो शतकोंमें क्रमशः काफी विकास किया और १७ वें शतकमें प्रेमानन्द जैसे कवि कलाकारको पाकर विकासके उच्च शिखरको प्राप्त किया। वैष्णव भक्ति मार्गने और आख्यानोंको गाकर सुनानेवाले कथाकारों और माणभट्टों*ने इस काव्य-प्रकारको अधिकाधिक लोकप्रिय बनानेमें विशेष योग दिया है। हमारे धर्म तत्त्वज्ञान और संस्कृतिके उत्तम अंशोंको मिश्री तरह उपदेश देनेवाली कथा-आख्यायिकाओं द्वारा जन-हृदयमें

---

* माणभट्ट—हाथमें रूपेके पात्रपर अंगूठीसे लहरी बजाते हुए गानेवाले पौराणिक कथाकार।

प्रवेश पानेकी पुराणोंने जो सेवा की है वही तथा आख्यानोंने मध्यकालमें की है और प्रजाके धर्म-संस्कारको जाग्रत रखा है।

रास-प्रबन्ध कहानी और आख्यान जैसी लम्बी कथात्मक काव्य-रचनाओंकी तरह गुजरातमें मध्यकालमें पद-साहित्य भी काफी लिखा गया है। जिस प्रकार पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें नरसिंह, मीरा, भीम, भालण, जनार्दन, केशवदास जैसे कवियोंकी कविता पदके स्वरूपमें मिली है और वे पद कविताका प्रधानतः विशेष रूपसे दिखाते हैं वैसे ही भालणसे लेकर दयाराम तकके कवि भी बहुधा पद-कवि ही हैं। प्रथम नरसिंह मेहताकी प्रभातियाँ और अन्य पद, मीराके भक्ति गीत, धीराकी काफियाँ, भोजाके चाबखे, आरतियाँ, हालरडा (लोरियाँ), भजन, गरबी इन सबका समावेश हो सकता है। दयारामके भक्ति-गीतोंको गरबियाँ कहा जाता है। ऐसे ही पद दयारामके पहले शान्तिदास, प्रीतम, राजे, रणछोड, गिरधर आदिने लिखे हैं और १८ वे शतकमें वल्लभने भी ऐसी ही रचनाएँ की हैं। सामान्यतः छोटी और ऊर्मि गीत प्रधान कृष्णोपासनीय ये रचनाएँ भी कृष्णलीला गानेके लिए ही लिखी गई हैं। गरबा गरबीसे लम्बा और कभी-कभी कथात्मक और वर्णनात्मक रचनाएँ होती हैं और वे नवरात्रिमें दुर्गा माताजीकी उपासनाके दिनोंमें गाई जाती हैं। इसकी रचना वल्लभ मेवाड़ा नामक एक शक्तिके उपासकने की और इन्हें गाकर अधिक लोकप्रिय बनाया। इसका विशेष सम्बन्ध शक्ति पूजासे है। गरबी और गरबा रासकी तरह वर्तुलाकार गतिमें घूमते हुए गुजरातके स्त्री-पुरुष गाते हैं। ऐसी रचनाओंका मध्यकालके साहित्यमें विशिष्ट स्थान है।

प्राचीन गुजराती कविता

१४ वीं शताब्दी तक के गुजराती साहित्यकी पद्य कृतियोंमें हेमचन्द्र सूरि द्वारा अपने प्राकृत व्याकरणमें अपभ्रंश विभागमें उल्लिखित और शृंगार-रसिक और सुभाषितात्मक अपभ्रंश दुहा, शालिभद्रसूरि कृत भरतेश्वर-बाहुबलि रास, बारहमासीकाव्य नेमिनाथ चतुष्पदिका, वसन्त विलास फागु, त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, श्री रूपक कथा, हंसराजकी और वत्सराजचरितकी कहानियाँ, ऐतिहासिक और काव्य रचनात्मक छन्द और विप्रलम्भ शृंगारके मुसलमान कवि द्वारा रचित सन्देश रासक इत्यादि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। १५ वें तथा १६ वें शतककी साहित्य-समृद्धिमें नरसिंह मेहता और मीराबाईकी प्रेम लक्षणा भक्तिकी कविता, पद्मनाभकृत वीरकाव्य कान्हडदे प्रबन्ध, भालणका कादम्बरी का सुन्दर पद्यानुवाद, नलाख्यान तथा दशमस्कन्ध, नाकरके आख्यान, नरपति और गणपतिकी क्रमशः 'नन्दबत्तीसी' और माधवानल-कामकन्दला की कहानियाँ, जैन कवि कुशललाभकी मारू ढोला तथा माधवानल-कामकन्दलाकी और नय सुन्दर की रूपचन्दकुंवर रास की कहानियाँ, नय सुन्दरका नलदमयन्ती रास

तथा काव्य समग्र कृत विमल-प्रबन्ध में सब उल्लेखनीय हैं। उसके बादके समयमें नरसिंह तथा भवाली वेदान्त कविता भवाके छप्पे प्रेमानन्दके आख्यान रत्नेश्वर और रत्नाके महीने शामलकी कहानियाँ शिवानन्द स्वामीकी आरतियाँ वल्लभके गरबा कबीर पन्थके साधुओंकी भजनवाणी दयारामकी गरबियाँ और स्वामीनारायण सम्प्रदायके साधुओंकी भक्ति वैराग्यकी कविता तथा वचनामृत इत्यादि गद्य उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन गुजराती साहित्य काव्य-प्रकार, काव्य-उपजीव्य और कम-अधिक शक्तिवाले कई कवियोंके वैविध्यसे भरा-पूरा था। अब तकके मुद्रित साहित्यकी अपेक्षा हस्तलिखित पोथियोंमें संग्रहीत मध्यकालीन गुजराती साहित्य विपुलताकी दृष्टिसे कम नहीं है।

शुद्ध कवित्वकी दृष्टिसे देखा जाए तो मध्यकालके कवियोंमें पद आख्यान प्रबन्ध कहानियाँ इत्यादि लिखनेवाले कोई ऊँचे कवि नहीं हैं। पदोंमें नरसिंह मेहता मीराबाई और दयारामकी कवि-प्रतिभा अन्य कवियोंमें कम दिखाई देती है। इसी तरह आख्यानकार तो कई हैं परन्तु उनमें समर्थ कवित्व दर्शित तो केवल प्रेमानन्द में ही है। कहानी-लेखकोंमें शामल और ज्ञानमयी कवियोंमें अखा अग्रणी हैं। परन्तु कवियोंके रूपमें ऊपर बताये चार नामोंके साथ इनके नाम नहीं रखे जा सकते। अलबत्ता मध्यम श्रेणीकी कवित्व शक्ति प्रदर्शित करनेवाले कुछ कवियोंकी कोई कोई कृतियाँ कविताके रूपमें आस्वाद्य कोटिकी बन पाई हैं फिर भी गुजरातको अपने मध्यकालीन साहित्यपर गर्व है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्य

ई. सन् १८४ के बादका गुजराती साहित्य अपने पूर्वके आठ सौ वर्षोंके साहित्यकी अपेक्षा अपने काव्य-उपजीव्यमें कथन-शैलीमें साहित्य प्रकारोंमें तथा उन सर्जकोंकी जीवन दृष्टि तथा साहित्य भावनामें कोई और ही प्रकाश फैलाता है। कुछ अपवादोंको छोड़कर पुराना साहित्य बहुधा धार्मिक साहित्य था। अर्वाचीन साहित्य को इस जीवनमें रस है। पुराने साहित्यमें ईश्वरका स्थान सर्वोपरि था। अर्वाचीन साहित्यमें वह स्थान मानवने प्राप्त किया है। पुराने साहित्यमें पद्यका उपयोग अति अधिक हुआ है। अर्वाचीन साहित्यने पद्यको बढ़ाया है विकसित किया है। इसने नाटक कहानी उपन्यास निबन्ध इत्यादि नए साहित्य प्रकार भी प्रस्तुत किए हैं। साहित्य केवल धर्म नीति वैराग्य इत्यादि भावना साधन नहीं परन्तु वह अपने ही लिए उपासना करने योग्य साध्य और वाणीकी आनन्दमयी कला है। यह दृष्टि अर्वाचीन गुजराती साहित्यमें है, जो मध्यकालीन साहित्यमें नहीं दिखाई देती।

पश्चिमका प्रभाव

देशमें ब्रिटिश शासनसे जो नई हवा पैदा की वह भी इस परिस्थितिके लिए उत्तरदायी है। विज्ञानकी भौतिक सिद्धियोंको देखकर उनका उपयोग करने

वासे अँग्रेजोंके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आनेसे तथा उन्होंने जो शिक्षा देना शुरू किया उससे उनके साहित्यका जो परिचय हुआ उससे हमारी प्रजाको नया दर्शन हुआ और हमारे लिए अबतकअज्ञातकी खिड़की खुल गई। प्रमाद तथा निष्क्रियताको धर्म तत्त्व ज्ञान द्वारा उपदिष्ट आन्तर निवृत्ति मान लिया गया और कर्म सिद्धान्तसे पुरुषार्थके स्थानपर अकर्मण्यता तथा निर्वीर्य प्रारब्ध परायणता और अल्प सन्तुष्टिमें बंधा हुआ प्रजाका बंधा हुआ जीवन जल पुनः प्रवाहित हो उठा। वह अपने भौतिक जीवनको बेहतर बनानेकी अभिलाषिनी और नए प्रकाशके लिए जिज्ञासु बनी। नव स्फूर्तिके उदयके समयपर विद्यालयों पुस्तकालयों मण्डलियों सभाओं, मुद्रणालयों समाचार-पत्रों व्यापार सम्पत्ति सारा वातावरण जाग्रत हो उठा। कलकत्ता मद्रास बम्बईमें सन् १८५७ ई० में विश्वविद्यालय प्रस्थापित हुए और गुजरातमें नवयुगका आरम्भ हुआ। इस नई हवामें अर्वाचीन गुजराती साहित्यका जन्म हुआ।

अँग्रेजी शिक्षा

इस अभिनव युगकी चेतनाके सन्देशवाहक साहित्यको तीव्रगामी बनानेवाले सिद्ध हुए। मिशनरियों तथा उनके बाद स्थापित होनेवाली पाठशालाओंने व्यवस्थित शिक्षा द्वारा प्रजाके भौतिक ज्ञानका सीमा-विस्तार किया। पाठ्य पुस्तकों द्वारा गद्यकी प्रारंभिक रचनाओंमें उससे सहायता मिली। अभिनव शिक्षण प्राप्त करनेवाले युवकोंके मण्डल (जैसे बम्बईकी "बुद्धि वर्द्धक सभा") स्थापित हुए। उस समय प्रसंगोचित पढ़े जानेवाले भाषणों विज्ञापन द्वारा मँगाये जानेवाले ईनामी निबन्धों नवनिर्मित रंगभूमि द्वारा प्रेरित नाट्य लेखनों मुद्रण यन्त्र द्वारा समाचार पत्रोंका प्रकाशन एवं ग्रन्थ प्रकाशनकी सुविधाओंने गुजराती गद्यको विकसित करनेमें अधिक सहायता पहुँचाई है। उस समय बम्बई विश्वविद्यालयकी स्थापनासे अर्वाचीन गुजराती साहित्यको पोषण मिला और उसके स्वरूप निर्माण पर प्रभाव पड़ा। अँग्रेजी भाषा और साहित्यके अध्ययनके साथ-साथ इस देशकी प्राचीन भाषा संस्कृत तथा फारसीका अध्ययन भी विद्यापीठकी पद्धतिपर आरम्भ हुआ। इन तीनों भाषाओंके साहित्योंका चित्तपर जो संस्कार पड़ा था वह दृढ़ बना। यह स्वाभाविक था कि इस प्रकारकी शिक्षा पानेवाले वर्गको स्वभाषामें अनुवाद तथा अनुकरणकी प्रेरणा मिले। संस्कृत काव्य नाटक आदिकी एक-एक कृतिके एकसे अधिक गुजराती अनुवाद भिन्न-भिन्न साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए। नाकार्सकरने हाफ़िज़की ग़ज़लोंका गुजरातीमें अनुवाद किया है। अनेक अनुवादकोंने अँग्रेजी तथा अँग्रेजी द्वारा यूरोपीय साहित्य रचनाओंका अनुवाद एवं हिन्दी बंगला मराठी आदि भारतीय भाषाओंकी श्रेष्ठ रचनाओंका स्वाद गुजरातको चखाया है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्यकी मौलिक रचनाओंपर संस्कृत फारसी तथा अँग्रेजीका प्रभाव पर्याप्त मात्रामें पड़ा है। संस्कृतके काव्य साहित्यके परिचय तथा

परिशीलनका परिणाम यह हुआ कि मध्यकालीन गुजराती कवियोंकी अपेक्षा दलपतराम तथा नर्मदाशंकरने और इन दोनोंकी अपेक्षा नरसिंहराव बालाशंकर, मणिलाल "कान्त" गोवर्धनराम हरिलाल भीमराव बलवन्तराय कलापी आदि तथा उनके नायकत्वके अनुयायियोंने कवितामें संस्कृत वर्ण वृत्तोंका उपयोग अधिक मात्रामें किया है। दलपतराम तथा नर्मदाशंकरके बादवाले कवियोंकी काव्य भाषामें (Diction) तथा पण्डितयुगके गद्य लेखकोंके गद्यमें अधिक मात्रामें संस्कृत शब्दोंके दर्शन होते हैं। इस नए युगमें बहुत कुछ सीख-सिखाकर अभिव्यक्त करते समय शब्दोंके अभावमें अथवा अनेक अंग्रेजी शब्दोंके पर्यायवाची शब्द देते समय संस्कृतकी शरण लेनेकी प्रवृत्ति स्वाभाविक थी। प्रारम्भिक कालके गुजराती नाटकों-पर संस्कृत नाटकोंका प्रभाव हम नान्दी सूत्रधार, भरत वाक्य विष्कम्भक प्रवेशक आदिकी योजनामें बीच-बीचमें रखी जानेवाली श्लोकात्मक कवितामें तथा अंकोंकी संख्यामें देख सकते हैं। अपनी रचना तथा अनेक अनूदित सामग्रियोंमें मणिलाल द्विवेदीका "कान्ता" रमणभाई नीलकण्ठका "राई नो पर्वत" रसिकलाल परीख द्वारा लिखित "शर्विलक" संस्कृत नाटकोंका अनुसरण करते हैं। प्रेमानन्दके रचे हुए तीन नाटक भी संस्कृत नाट्य शास्त्र तथा नाटकोंके किसी अर्वाचीन लेखक द्वारा लिखे गए-से प्रतीत होते हैं। यह सर्वविदित है कि संस्कृत महाकाव्योंके आदर्शोंके अनुसरणपर पृथ्वीराज रासा तथा "इन्द्रजीत वध" काव्य लिखे गए हैं। काव्यके रूप रस अलंकार आदिके अध्ययनने अर्वाचीन गुजराती काव्यकी भाषाको परिपुष्ट किया। उससे साहित्य विवेचनकी दिशामें भी अच्छी सहायता मिली है। संस्कृतके अध्ययनने वेद उपनिषद् वेदान्त दर्शन और पुराण आदिका प्रत्यक्ष और गहरे अध्ययनको परिपुष्ट कर अर्वाचीन लोगोंका स्वधर्म ज्ञान स्पष्ट बनाया। उससे प्रारम्भिक कालके विवेकहीन पाश्चात्यानुसारी सुधारके प्रति मुग्धतापूर्ण आकर्षण कम हुआ और उसके स्थानपर पूर्वाभिमुखता स्वसंस्कृति-निष्ठा क्रमशः समुन्नत तथा समन्वय दर्शनका आगमन हुआ। यही गोवर्धनराम त्रिपाठी मणिलाल द्विवेदी तथा आनन्दशंकर ध्रुवका प्रेरक स्रोत बना।

सोलहवीं शतीसे ही गुजरातको फारसीसे परिचय होने लगा था। रण छोड़लाल दीवान जैसे लेखकने फारसीमें पुस्तक भी लिखी है। यूनिवर्सिटीने फारसी साहित्यके व्यवस्थित अध्ययनका अवसर दिया। फलस्वरूप फारसी तथा उर्दू कविताका जो परिचय बढ़ा उससे गुजराती कवितामें इश्क मिजाजी तथा इश्क हकीकी कविताका और गजलोंको लिखनेकी प्रवृत्ति बढ़ी। बालाशंकर, मणिलाल देरासरी कलापी सागर आदिकी गजलोंको तो बहुत ही प्रसिद्धि मिली। साथ ही साथ गोवर्धनराम कान्त नानालाल बालाशंकर मरीज कवियोंने भी फारसी छन्दमें कविताएँ लिखी हैं। गांधीयुगके अन्तिम ढाई दशकोंमें भी गजल लेखकोंका एक पृथक् वर्ग बन गया है तथा मुशायरोंने अधिक प्रशंसा प्राप्त की है।

पाश्चात्य साहित्यकी देन

अँग्रेजी साहित्य नित्य विकसित तथा स्फूर्तिशील था। उसके द्वारा अन्य पाश्चात्य भाषाओंके साहित्यका परिचय भी धीरे-धीरे बढ़ सकता था। इसलिए उसका प्रभाव अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर उत्तरोत्तर बढ़ गया। पण्डितयुगकी समाप्तिके बाद तो यह प्रभाव और भी बढ़ गया है और गुजराती साहित्यने पाश्चात्य साहित्यकी प्रगतिसे ताल मिलाया है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर संस्कृत तथा फारसी साहित्यकी अपेक्षा अँग्रेजी साहित्यका विशेष प्रभाव पड़ा है। युनिवर्सिटीकी शिक्षा प्राप्त करनेवाली पीढ़ी अँग्रेजी कविताके सम्पर्कमें आई। फलतः अँग्रेजीका संस्कार लेकर बाहर निकलने वालोंने गुजरातीमें वैसी ही कविता लिखनेका प्रयत्न किया। हम नरसिंहरावकी "कुसुममाला" को उसका परिणाम कह सकते हैं। बलवन्तराय ठाकोरने गुजरातीमें 'सुनीत' (Sonnet) लिखे। यह प्रयत्न काफी सफल हुआ और लोकप्रिय बना। अँग्रेजी कविताके "ब्लैंक वर्स" को गुजराती पद्य-रचनामें स्थान देनेका प्रयास ठाकोर, केशवलाल ध्रुव न्हानालाल और खबरदार द्वारा हुआ। अँग्रेजी कविताके अध्ययनसे प्रेरित होनेके कारण खण्डकाव्योंपर अँग्रेजी प्रबंध काव्योंका तथा महाकाव्योंपर पश्चिमके 'एपिक' (Epic) का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। हम गुजरातीमें गत शताब्दीके अन्तर्गत प्रकृति देशाभिमान और आत्मनिष्ठ कविताको जो इतने अधिक परिमाणमें लिखा हुआ पाते हैं ईश्वरको छोड़कर प्रणय प्रकृति और मानवकी अनेक ऐहिक भावानुभूतिको कवितामें जो आदर णीय स्थान मिला यह सब अँग्रेजी कविताका ही प्रभाव कहा जाएगा। अर्वाचीन गुजराती पद्यपर अँग्रेजी गद्यका प्रभाव भी कम नहीं है। गत शताब्दीमें ही गद्यको साहित्यिक प्रतिष्ठा मिली यह विपुल मात्रामें लिखा गया और विकसित हुआ। अँग्रेजी साहित्यके प्रभावसे ही नाटक कहानी उपन्यास निबन्ध निबन्धिका चरित्र आदि गद्यांगोंका आगमन गुजरातीमें हुआ। गुजरातीके इन सभी साहित्यांगोंके शिल्प-विधानपर पश्चिमके उसी साहित्यांगके स्वरूप और शिल्प-विधानके अनुसरण की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रारम्भिक कालमें गुजराती नाटकोंपर लोकरञ्जक नाट्य 'भवाई' का प्रभाव पड़ा और उससे भी अधिक संस्कृत नाटकका प्रभाव था। किन्तु उसके बादमें लिखे जानेवाले नाटकोंसे लेकर आजकलके एकांकियों तकमें विकासमें अँग्रेजी और पश्चिमके नाटकोंका प्रभाव दिखाई देता है। गुजराती साहित्यमें समालोचनाका प्रारम्भ अर्वाचीन युगमें हुआ है। उसपर संस्कृत टीकाकारोंकी विवेचन पद्धतिका प्रभाव नहीं पड़ा वह पाश्चात्य साहित्य शास्त्र और विवेचन सिद्धान्तोंसे ही प्रभावित है।

कहानी नाटक उपन्यास इत्यादिका कला स्वरूप पश्चिमकी देन है। इसलिए उसका विवेचन भी पाश्चात्य पद्धतिसे ही यह स्वाभाविक ही था। अर्वाचीन

गुजरातकी काव्य-भावना, साहित्यिक दृष्टि तथा रस-रुचिको सँवारनेमें पाश्चात्य साहित्य-मीमांसाका विशेष हाथ है।

अभिनव प्रयोग

विश्वविद्यालयकी शिक्षासे संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी साहित्यने अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर अपना प्रभाव अवश्य डाला, परन्तु प्राचीन साहित्यसे उसका बिलकुल विच्छेद नहीं हुआ। प्राचीन पदोंका प्रवाह अब भी दलपतरामकी गरबियों और दोहरोंमें, नर्मदके पदोंमें, त्रिभुवन (मस्त कवि) से लेकर आज तकके कवियोंके भजनोंमें, न्हानालाल और बोटादकरके रास और गीतोंमें तथा मेघाणीके लोकगीतोंकी पद्धतिके अनुसरणमें नए रूपमें अविच्छिन्न बह रहा है। दलपतरामके "वेन चरित्र" तथा नरसिंहरावके "बुद्ध चरित्र" में प्राचीन कथा-पद्धतिका प्रयोग हुआ है। कवि न्हानालालके "हरिसंहिता" काव्य ग्रन्थमें समस्त पुराण तथा मध्यकालीन गुजराती कथा शैलीका अनुसरण है। प्राचीन भक्तिपूर्ण कविताकी अनुभूति दलपत नर्मद भोलानाथ नरसिंहराव रमणभाई कान्त न्हानालाल खबरदार सुन्दरम् पूजालाल आदि कवियोंकी कविताओंमें सुनाई पड़ती है। आज भी छोटम ऋषिराज धनारसा शंकर महाराज और दुला काग जैसे अनेक भजनीक कवियोंकी रचनाओंमें मध्यकालीन भक्ति वैराग्य वेदान्तकी धारा प्रवाहित है। शामलकी शैली परक कविताओं जैसी ही कविताएँ दलपतरामने लिखी हैं और महीपतरामने अपनी कथाओंमें मर्मवार्ताओंकी रचना करके मानो लोक-कथाका प्रवाह नए युगमें कुछ समय तक बहते रहने देनेका प्रयत्न किया है। प्रारम्भिक कालके गुजराती नाटकोंमें भवाईका कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

संसार सुधार युग

उपर्युक्त प्रभावोंको प्रकट करनेवाले पिछले ग्यारह दशकोंके गुजराती साहित्यको सामान्यतः तीन भागोंमें बाँट सकते हैं। प्रेरक बल तथा प्रधान लक्षणोंको ध्यानमें रखते हुए प्रथम विभागको 'संसार सुधार युग' कहते हैं। इस युगके अग्रगण्य प्रभावशाली साहित्यकारोंके नामोंसे सम्बन्धित परिचय देना हो तो हम इसे नर्मद युग अथवा दलपत-नर्मद युग कह सकते हैं। इसके समयकी अवधि सन् १८२ से नर्मदके देहावसान (सन् १८८६) तक मानी जा सकती है। इस कालका साहित्य प्रजा जीवनमें व्याप्त स्फूर्ति तथा जागृतिके वातावरणमें लिखा गया है। लौकिक जीवनको सुखी समृद्ध बनानेकी अभिलाषा उत्पन्न करनेवाली नई शिक्षाने व्यक्तिस्वतन्त्रता, भूत-विश्वास निरर्थकता, बाल-विवाह, जाति-बन्धन, स्त्रियोंका अनिवार्य वैधव्य, समुद्रपारीय यात्रापर प्रतिबन्ध तथा ऐसी ही अन्य बातोंको

प्रगतिके लिए बाधक माना और इसके निवारणके लिए आवाज ऊँची की। इस युगका साहित्य अधिकांशतः इसी उद्बोधका वाहक है।

नर्मद जिस प्रकार जीवनमें सुधारके सेनानी थे उसी प्रकार साहित्यमें भी सुधारक कवि बने। दलपतराम लोक-शिक्षक तथा सुधारके कवि थे। सुधारकी बाइबिल सरीखी "नर्म कविता" दलपतराम कृत "वेनचरित्र" नवलराम कृत "बाललग्न बत्रीसी" महीपतराम कृत कहानी "सासु वहुनी लडाई" रणछोड़भाईका "जयकुमारी विजय" तथा "ललिता दुःख दर्शक" नाटकमें सुधारकी भावना सांस लेती है। उस कालमें मानो सुधार ही साहित्यका प्रेरक स्रोत बन गया था। यदि लोक शिक्षणका वाहन अथवा माध्यम बननेवाला यह साहित्य उद्देश्य परक बना हो और उसमें कलात्मकता कम पाई जाती हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस युगके साहित्य-निर्माताओंमें दलपतराम सरीखे अंग्रेजी शिक्षासे अछूते रहनेवाले तथा नर्मद नवलराम सरीखे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किन्तु विश्वविद्यालयकी उपाधिसे रहित लेखकोंमें जितना उत्साह दिखाई देता है उतनी गम्भीरता नहीं नजर आती। नाटक उपन्यास आदि साहित्यांगोंपर कला-विधानकी दृष्टिसे उनका हाथ अच्छी तरह सधा हुआ नहीं प्रतीत होता।

इस युगमें साहित्य विकासकी दृष्टिसे दलपतरामकी उपदेशात्मक छन्द युक्त सभारंजनी कविता नर्मदकी प्रकृति प्रणय देशाभिमानकी कविताएं नर्मद नवलराम और मनसुखरामके निबन्ध नर्मद नवलराम और नन्दशंकरका गद्य रणछोड़भाई और नवलरामके नाटक नन्दशंकरका "करणघेलो" नामका प्रथम गुजराती ऐतिहासिक उपन्यास नवलरामकी समालोचना विशेष उल्लेखनीय है।

पण्डित युग

इसके पश्चात पण्डित युग आरम्भ होता है। यदि इस युगका नामकरण महान् साहित्यिक प्रतिभाके नामपर किया जाए तो इसे गोवर्धन युग कहेंगे। इस युगके साहित्य-निर्माताओंमें से अनेक (हरिलाल केशवलालध्रुव कान्त रमणभाई, नरसिंहराव बालाशंकर, बलवन्तराय मणिलाल आदि) बम्बई विश्वविद्यालयके उपाधिधारी थे। इस युगमें विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर निष्ठापूर्वक अध्ययन-मननमें रत रहनेवाले वाङ्मय सेवी सरस्वती भक्त भी अनेकानेक हुए हैं। इसीलिए इस युगकी चिन्तन-धारामें पाण्डित्य परिपक्वता गम्भीरता सूक्ष्मता और व्यापकता पिछले युगसे अधिक आई। काव्य भावना तथा कला-दृष्टिसे विकसित होनेपर साहित्यिक रचनाओंमें कलात्मकता रसमयता और साहित्यिक महत्ता आई। इसीलिए कविता तथा गद्यकी भाषा अधिकाधिक शिष्ट प्रौढ़ रसान्वित मार्मिक और अर्थवाही बनी। सन् १८८६ में नर्मदका अवसान हुआ। उसके चार वर्ष बाद ही नरसिंहरावका काव्य संग्रह 'कुसुम माला' गोवर्धनरामका

उपन्यास "सरस्वती चन्द्र" (प्रथम भाग) नामक तीन प्रसिद्ध खण्डकाव्य गोवर्धन कृत "स्नेह मुद्रा" और केशवलाल ध्रुवका मुद्राराक्षसका अनुवाद मध्यनी मुद्रिका इत्यादि प्रकाशित हुए। इस प्रकार नर्मदके देहावसानके बाद पंडित युगका प्रारम्भ माना गया है। इस युगके लेखकोंमेंसे अनेकने सन् १८८० के आस-पासमें लिखना आरम्भ किया था।

इस शताब्दीमें अंग्रेजीके रोमान्टिक कवियोंके प्रभावसे लिखी गई नरसिंहराव, कान्त बलवन्तराय ठाकोर तथा न्हानालालकी कविताएँ, मणिलाल द्विवेदी तथा केशवलाल ध्रुवके संस्कृत नाटकोंके अनुवाद बालाशंकर, मणिलाल तथा कलापीकी गज़लें, हिन्दी देश-भक्ति विचारधारा सजगताका माननीय दर्शन करानेवाले गोवर्धन त्रिपाठीका चार भागोंमें महाकाय उपन्यास "सरस्वती चन्द्र" कान्त रचित "वसन्त विजय" आदि तीन अपूर्व खण्डकाव्य पूर्व और पश्चिम दोनोंके नाट्य-कलाओंसे समन्वित मणिलाल कृत "कान्ता" तथा रमणभाई कृत "राईनो पर्वत" नाटक मणिलालके निबन्ध मणिलाल रमणभाई आनन्दशंकर एवं नरसिंहरावका साहित्य विवेचन मणिलाल रमणभाई तथा आनन्दशंकरका धर्म चिन्तन भीमराव दौलतराय तथा कलापीके महाकाव्य केशवलाल ध्रुव मणिलाल रमणभाई आनन्दशंकर आदिके व्यक्तिगत विशिष्टता सम्पन्न गद्य हास्यरसकी गुजरातकी एक स्मरणीय रचना "भद्रंभद्र" केशवलाल तथा नरसिंहरावका भाषा शास्त्र विषयक काम साहित्यकारों तथा चिन्तकोंके लिए एक सन्द आदर्श उपस्थित करनेवाला आत्मनिगत जीवन चिन्तन ग्रन्थ "मातर जीवन" आदि रचनाएँ गुजराती साहित्यके इस युगको उज्ज्वल बनाती हैं। पंडित युग पिछली शताब्दीमें ही समाप्त नहीं हो गया अपितु वह एक शताब्दीसे दूसरी शताब्दीमें भी बढ़ता रहा। पंडित युगके नरसिंहराव दीवेटिया केशवलाल ध्रुव बलवन्तराय ठाकोर, रमणभाई नीलकण्ठ आनन्दशंकर ध्रुव न्हानालाल जैसे साक्षरवर्योंने पंडित युगके पश्चात गांधी युगमें भी अपनी उत्तम रचनाएँ की हैं।

गांधी युग

अर्वाचीन गुजराती साहित्यका यह तीसरा युग गांधी युग कहा जाता है। साहित्य क्षेत्रमें इसका प्रारम्भ सन् १९२० से माना जा सकता है। गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे सन् १९१५ में भारत आए। कुछ समय वे शान्त रहे। सन् १९१९ में इन्होंने "नवजीवन" और "यंग इण्डिया" शुरू किए और उनमें लिखने लगे। उनके पास जो कहना था उसे सारे देशके आम जनता तक ऐसी भाषामें देने लगे। उनकी दृष्टिमें भाषा विचार व्यक्त करनेका साधन मात्र है। उन्होंने अपनी सरल सादी अनाडम्बरी सात्विक किन्तु प्रभावशाली गद्य शैलीका निर्माण किया। लोगोंसे बात करनेवाला भी जिस सहज भावसे उससे बात करता है इस तरह अपनी

साहित्य भावनाको सबोंके सामने रखा। इसके परिणाम स्वरूप साहित्यमें भाषाकी सादगी आई और भारी-भरकम संस्कृत प्रचुर पण्डित शैलीकी प्रतिष्ठा कम हुई। गाँधीजीकी गुजराती साहित्यकी प्रत्यक्ष सेवा उनकी गद्य शैलीके अलावा "सत्यना प्रयोगो" नामक उनकी आत्मकथा है। समान वर्तनी तैयार करवानेका श्रेय भी उनको ही है। साबरमती आश्रमके काका कालेलकर, महादेवभाई देसाई, किशोरलाल मशरूवाला इत्यादि आपके समीप रहनेवाले तथा उनके द्वारा गुजरात विद्यापीठके रामनारायणभाई पाठक रसिकलाल परीख पण्डित सुखलालजी जैसे प्राध्यापकोंकी और "सुन्दरम्" "स्नेह रश्मि" इत्यादि विद्यापीठके स्नातकोंकी सेवा गुजराती वाङ्मयको मिली यह गाँधीजीकी परोक्ष साहित्य सेवा है।

गाँधी-साहित्यका आदर्श

स्वयं गाँधीजी तथा उनके नेतृत्वमें लड़ा गया स्वातन्त्र्य संग्राम कवियोंकी रचनाओंके उपजीव्य बने। गाँधी युगके कई कवियोंने स्वातन्त्र्य संग्रामसे स्फुरित युयुत्साकी स्वातन्त्र्यकी अहिंसाकी बलिदानकी भावनाके गीत बड़े उत्साहसे गाए हैं। गाँधीजीने दरिद्रनारायण और गाँवोंकी सेवापर जोर दिया। इसलिए साहित्यकारोंकी सहानुभूतिका क्षेत्र विशाल बन गया। अब तक जो देहाती तथा पिछड़ी जातिके मानवोंका जीवन साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित था उसकी ओर भी साहित्यकारोंकी दृष्टि गई। साहित्यमें जीवन तथा वास्तविक जीवनके प्रश्नोंका निरूपण होता गया और विषयका विस्तार तथा नवीनता आ जानेसे साहित्य भी प्राणवान बना। ग्रामोद्धार तथा अस्पृश्यता निवारणकी प्रवृत्ति द्वारा कई लोककथाओं (अस्पृश्यता निवारणमें सहायक होनेवाली कथाएँ) का तथा नाटकोंका सर्जन हुआ। साहित्यमें किसानों एवं मजदूरोंके सुख-दुःखको तथा वेश्या-जीवनके प्रश्नोंको भी स्थान दिया गया। गाँधीजी द्वारा निर्दिष्ट मानव-धर्ममें समानतावादी विचार-धारा आ मिली। इस विचार-धाराने कविता तथा कहानी साहित्यमें दलितोंके जीवनको तथा क्रान्तिको भी स्थान दिलाया। वास्तववादी साहित्यका ही यह परिणाम था। गाँधीजी द्वारा जागृत की गई नवचेतना तथा उनके बताए गए जनता-प्रेमके कारण तथा स्वदेशी भावनासे प्रभावित होकर लोक-साहित्यमें अनुशीलन-सम्पादन प्रवृत्तिमें बहुत बड़ी प्रगति हुई। यह उल्लेखनीय है कि इस कार्यमें दृष्टि एवं शक्ति तथा सच्ची रुचि रखनेवाले मेघाणी भाईने अपने कण्ठ-स्वर, कलम तथा रसवर्षी विवेचनोंसे सोरठी साहित्यको लोकप्रिय बनाते हुए उसे प्रतिष्ठा भी दिलाई। सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला तथा दक्षिणमूर्ति भवन के शिक्षा निष्णातोंकी विचारधारा और गिजुभाई तथा जुगतराम भाई जैसोंका बाल साहित्य तथा बाल शिक्षा विषयक विचार-धाराका श्रेय भी गाँधी द्वारा तैयार किए गए वातावरणको ही है।

प्रारम्भिक साहित्य सर्जन

औद्योगिक क्रान्तिके परिणामोंने नयी मनोवैज्ञानिक खोजोंने तथा समाज शास्त्रने पश्चिमके साहित्यपर असर डालते हुए उसे नया स्वरूप देना शुरू किया था। इसका भी प्रभाव गांधी युगके अर्वाचीन साहित्यपर पड़ा है। इस युगके साहित्यमें लेखकोंकी कला-दृष्टि तथा प्रयोगशीलता नर्मद युग तथा पण्डित युगके लेखकोंसे अधिक तजस्वी है। नन्दशंकरने "करणघेलो" में महीपतरामने "वनराज चावडा" जैसी तीन कथाओंमें तथा गोवर्धनरामने "सरस्वतीचन्द्र" में बहुत-सी ऐसी सामग्री दी है कि जिसका मूल कथासे कोई सम्बन्ध नहीं है। उपन्यास कहानी या नाटकमें मूल वस्तुमें बिना कुछ मिश्रण किए, मूल वस्तुका ही उद्देश्य समस्त रखकर कलाविधान करके कृतिको सुश्लिष्ट कलाकृति बनानेकी प्रवृत्तिके प्रथम दर्शन हमें पण्डित युग तथा गांधी युगके बीचकी कड़ी रूप तथा गांधी युगमें भी अब तक लिखते रहनेवाले श्री कन्हैयालाल मुंशीके पहले की दो उपन्यास "वेरनी वसूलात" तथा "पाटणनी प्रभुता" में होते हैं। इसीके साथ-साथ 'कलाके लिए कला" का दृष्टिकोण भी अर्वाचीन गुजराती साहित्यमें आ गया है। गांधी युगमें इस सिद्धान्त का कभी-कभी विरोध भी हुआ है।

इस युगमें पण्डित युगके दो बड़े कवि न्हानालाल तथा बलवन्तराय ठाकोरकी काव्य-साधना चलती रही। न्हानालालने इस युगमें बहुत-से नाटक "कुरुक्षेत्र" महाकाव्य और अपूर्ण पुराणकाव्य "हरि संहिता" लिखे हैं। श्री न्हानालालके प्रारम्भ कालमें उनका प्रभाव उनके बादवाली पीढ़ीपर भी कम-ज्यादा पड़ा है। इसका असर रास तथा गीतोंके सर्जकोंपर ज्यादा हुआ है। परन्तु साहित्यिक दृष्टिसे देखा जाए तो गांधी युगके कवियोंपर बलवन्तराय ठाकोरका प्रभाव अत्यधिक है। बलवन्तराय ठाकोरने भावनाके बदले अर्थघनतापर तथा सरल अपद्य प्रवाही पद्य रचनापर उसके लिए आवश्यक अर्थानुसारी गतिवाले पृथ्वी छन्दपर, कविताकी वाक्य स्वाभाविकतापर और कवितामें विचार प्रधानता तथा अर्थघनतापर ज्यादा जोर दिया। इसका असर गांधी युगके कवियोंपर भी हुआ है। परन्तु सुन्दरम्" उमाशंकर तथा इस युगके अन्य कवियोंने ठाकोरसे प्रभावित होते हुए भी विपुल मात्रामें स्वतन्त्र सर्जन किया है। इस युगकी गुजराती कविता सम्वेदना तथा अभिव्यक्तिके दायरेको विस्तृत करते हुए, बड़ी प्रगतिशील और प्रयोगशील भी रही है। इसपर गुजराती साहित्य रसिक गर्व कर सकते हैं। गांधी युगने कविता ही नहीं बल्कि गद्य कहानी उपन्यास नाटक निबन्ध चरित्र आत्मचरित्र प्रवास वर्णन विवेचन हास्य साहित्य भाषा शास्त्र इतिहास पुरातत्व प्राचीन मध्य कालीन कृतियोंका सम्पादन ऐसे वाङ्मयके सभी स्वरूपोंका सर्जन किया है कि जिसमें सजग प्रतिभाकी तथा श्रम साध्य विद्वत्ताकी झलक रही है। इन सर्जकोंकी सूची इतनी लम्बी है कि उसे यहाँ देना सम्भव नहीं है।

गुजराती उपन्यास कहानी तथा नाटकमें जीवन और नया खून लानेवाली बातें जो इस युगमें हुई हैं उसे "आपणा भारा" तथा 'आगगाडी' ने पहले बताया और उसके बाद जिसका अनुसरण हुआ है वह है "बोली" (Dialect) का कहानी नाटिकामें उपयोग। बोली " का साहित्य कृतियोंमें उपयोग होनेसे उसके साथ उस बोलीके बोलनेवाले उनका भौगोलिक प्रदेश व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन व्यवहार, उनके स्वभाव-संस्कार, रहनी-करनी वगैरह साथ आते ही हैं। ऐसे पात्र साहित्यकी इस तरहकी वास्तविकताकी मांगो मदद करनेके लिए पन्नालाल पटेल चुनीलाल मडिया ईश्वर पेटलीकर, पुष्कर चन्दरवाकर जैसे गाँवोंमें पले नवयुवक लेखक गुजरातको इस युगमें प्राप्त हुए। इसीका ही परिणाम है कि "मळेला जीव" "घूघवता पूर " जन्म टीप " तथा " मानवी नी भवाई जैसी पुस्तकोंने साहित्य रसिकोंको अपनी ओर आकर्षित किया।

साहित्यमें विविधता तथा विपुलता

गाँधी युगमें गुजराती साहित्यने बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। पण्डित युगमें शुरू हुई नानालालकी ऊर्मि कविताने महाकाव्य तथा पुराण काव्यके रूप धारण करनेका प्रयत्न इसी युगमें किया। पण्डित युगके बलवन्तराय ठाकोरका प्रसिद्ध और कीर्तिमान काव्य सर्जन इस युगमें नई पीढ़ीके लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुआ। सुन्दरम् उमाशंकर तथा उनके कई समकालीन एवं अनुगामी कवि नानालाल कान्त ठाकोर तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एवं समकालीन पाश्चात्य कविताके प्रभावको अपनाते हुए सतत प्रयोगशील रहे तथा कवि-कुलकी प्रिय सनातन सौन्दर्य पिपासा तथा समन्वय साधनाके प्रति निष्ठावान रहकर सामाजिक जागरूकता और मानवधर्मी संवेदनशीलताका ध्यान रखते हुए कविताका सर्जन करते हैं। यह भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके बीच समुन्नत साधना है। उपन्यासमें आभिजात्यात्मक कथोपकथन तथा उससे उद्भूत रम्यकथा तथा जीवनका प्रतिबिम्ब इसमें मुंशी रमणलाल मेघाणी चुनीलाल शाह और दूसरे सामाजिक उपन्यासकारोंमें मिलता है। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें मुंशी धूमकेतु चुनीलाल शाह गुणवन्तराय आचार्य मेघाणी तथा दर्शक जैसोंकी कृतियोंमें ओजस्विता है। पन्नालाल पटेल चुनीलाल मडिया ईश्वर पेटलीकर इत्यादि जनपदोंसे आनेवाले उपन्यासकारोंने ग्रामीण लोक समाजका उसके भौगोलिक सामाजिक व्यक्तिगत बाह्य परिवेशोंके साथ उनके सुख दुःखादि तथा भावानुभावोंका वास्तविक चित्र इन उपन्यासोंमें चित्रित करके नया जीवन भरा है। गुजराती साहित्यकी यह औपन्यासिक समृद्धि बहुत अच्छी है। कहानी कलाका सही विकास तो गाँधी युगमें ही हुआ है। कहानीकी सिद्धि भी उतनी उज्ज्वल है। गुजराती कहानी मोपासां चेखोव तथा आधुनिक पाश्चात्य कहानी-कारोंकी कहानी कलाका अनुसरण करती हुई विकसित हो रही है। इसे धूमकेतु,

द्विरेफ उमाशंकर आदि लेखकोंसे लेकर आजके सुरेश जोषी तकने बीसों कहानीकारों ने अपनी कृतियोंसे सिद्ध करके बताया है।

नाट्य साहित्य क्षेत्रमें सुधार युगने केवल प्रारम्भ ही किया था। साहित्यिक उत्कर्ष तो पण्डित युगके मणिलाल द्विवेदीके "कान्ता" रमणभाई नीलकण्ठके "राई नो पर्वत" इन दो नाटकोंमें तथा न्हानालालके भाव प्रधान नाटकोंमें ही देख सकते हैं। १९२० के बाद चार दशकामें नाटक साहित्यका न्हानालालके नाटकोंके अलावा मुंशी चन्द्रवदन मेहताके नाटकोंने तथा बटुभाई उमरवाडिया उमाशंकर जयन्ति दलाल मडिया शिवकुमार आदिके एकांकियोंने काफी समृद्ध किया है। साहित्यिक नाटकों और रंगभूमिके बीच बढ़े हुए अन्तरको इन नाटकोंने बहुत कुछ कम किया है। अवैतनिक (Amature) रंगभूमिने रेडियोने तथा लोकशिक्षणके महत्त्वपूर्ण साधनके रूपमें इस कलाको प्रान्तीय सरकारने जो प्रोत्साहन देना शुरू किया है इससे गुजराती नाटकके विकासमें बहुत बड़ा बल मिलेगा। गुजरातीका चरित्र वाङ्मय भी परिपुष्ट है। दलपतके जमानेका परिचय दिलाने वाला "कवीश्वर दलपतराम" के मन 'वीर नर्मद' "नरसैंयो भक्त हरिनो" और 'गुरु" नाटक जैसी रसात्मक सर्जकताके अंशोंसे भरी हुई चरित्र कृतियाँ तथा "स्मरण मुकुर" 'रेखाचित्रों" जैसे रेखा चित्र संग्रह चरित्र नायककी महानताके कारण नहीं बल्कि उनकी रचना एवं सत्यनिष्ठाके अनुकरणीय स्वरूप कारण महत्त्वपूर्ण हैं। गुजरातीकी ही नहीं जगत्की आत्मकथाओंमें महत्त्वपूर्ण गांधीजीकी आत्मकथा "सत्यना प्रयोगो" काका कालेलकर, मुंशी धूमकेतु चन्द्रवदन मेहता रमणलाल देसाई नानाभाई भट्ट इन्दुलाल याज्ञिक आदिकी आत्मकथाएँ "मर्महृदय" की रोजनिशी महादेवभाई की डायरी जैसी दैनन्दिनी कृतियाँ गुजराती जीवन चरित्र साहित्यके गौरवको बढ़ाती हैं। रसात्मक प्रवास वर्णन काका कालेलकरके हिमालयका प्रवास पूर्व अफ्रिका तथा जापानकी प्रवास पुस्तक चिन्तनात्मक निबन्धोंमें काका कालेलकर गांधीजी महादेवभाईके निबन्ध तथा लेख निबन्धोंमें रामनारायण पाठक ज्योतीन्द्र दवे विजयराय वैद्य निबन्धोंमें मकर बकुल जोशीपुरा इनके लेख व निबन्ध उल्लेखनीय हैं।

स्व श्री मेघाणी रचित अनेक पुस्तकों द्वारा किया गया सौराष्ट्र लोक साहित्य विषयक संशोधन एवं प्रकाशन तथा अमुद्रित और भी शिशुभाषामें सुन्दर बालक रमणलाल सोनी इनकी अनेक कृतियोंद्वारा निर्मित विपुल बाल्य-साहित्य गुजराती सुपरा सजल है। साहित्य विवेचनके क्षेत्रमें इस युगके श्री रामनारायण पाठक विजयराय वैद्य विश्वनाथ भट्ट विष्णुप्रसाद त्रिवेदी तथा दूसरे कई विख्यात विद्वान के नाम गिनाए जा सकते हैं। इनके ग्रन्थोंमें भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य मीमांसाका अध्ययन तथा विनियोग स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता है। जिनविजयजी पं सुखलालजी दुर्गाशंकर शास्त्री रसिकलाल परीख रामलाल मोदी मधुसूदन

मोदी के का मास्त्री जोगीलाल सांडेसरा उमाशंकर जोशी इत्यादि विद्वानोंने तत्त्वज्ञान इतिहास पुरातत्त्व भाषा शास्त्र अनुशीलन जैसे विद्वत्तापूर्ण श्रम-साध्य विषयोंपर लेखनी चलाकर पण्डित युग तथा गांधी युगका सातत्य बना रखा है। गुजराती भाषाकी वर्तमानता अब लगभग समान हो जाना इस युगकी महान् सिद्धि है।

पिछले सौ वर्षोंमें गुजराती साहित्यको उल्लेखनीय सहयोग देनेवाले पत्र पत्रिकाओंमें मुख्य है —"ज्ञानसुधा" "वसन्त" "सुन्दरी सुबोध" "साहित्य" "बीसमी सदी" "गुजरात" "युगधर्म" "प्रस्थान" "कौमुदी" "कुमार" "बुद्धि प्रकाश" "ऊर्मि" "संस्कृति "गुजराती" नवजीवन" "प्रजाबन्धु" "सौराष्ट्र"। गुजरात विद्या-सभा फार्बस गुजराती सभा गुजराती साहित्य परिषद गुजरात साहित्य सभा साहित्य संसद तथा गुजरात विद्यापीठ जैसी संस्थाओंने गुजरातीके रचनात्मक एवं शास्त्रीय वाङ्मयके उत्कर्षमें अपूर्व सहयोग दिया है।

आठ सौसे भी अधिक समयका गुजराती साहित्यका यह संक्षिप्त परिचय भारतीय भगिनी भाषाओंको यह प्रतीत कराएगा कि मध्यकालीन एवं अर्वाचीन साहित्यकी सामाजिक भूमिका उसके प्रेरक बल साहित्यके स्वरूप एवं उसके विकासका इतिहास भारतकी वर्तमान भाषाओंके साहित्यके समान ही है। कृतियों और कर्ताओंके नाम ही भिन्न हैं शेष सभी बातोंमें समानता है।

[नोट—सन् १९२ से आज तकके गुजराती साहित्य का संक्षिप्त परिचय कवि-श्री माला सुन्दरम् में दिया गया है।]

• • •

दयाराम

[कवि-परिचय]

दयाराम

• • •

दयारामके व्यक्तित्व एवं जीवन प्रसंगोंको लेकर गुजरातमें कई कल्पित किस्से प्रचलित हुए हैं। अतः दयारामके रिश्तेदारोंके नाम तथा जीवन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण घटनाओंके समयके बारेमें जो मतभेद है वह उनके जीवनकी सत्य घटनाओंके बारेमें नहीं है। नर्मदाके तट पर स्थित चाणोदमें साठोदरा नागर गृहस्थ श्री प्रभुराम भट्टके पुत्र श्री दयारामका जन्म ई॰ सन् १७७७ में हुआ था। दसवें वर्षमें माताको बारहवें वर्षमें पिताको खो देनेवाले निराधार दयारामने परवरिश कस्ब-वासी चचेरे भाईके आश्रय पाया। उन्होंने जीवनके उत्तरार्धमें भी रत्ने नामक सम्बन्धी द्वारा जीवनका शेष भाग उनके घरोंमें ही बिताया। इन तथ्यों निष्कर्षोंसे अनुमान लगाया जाता है कि मातृ-पिताकी अनुपस्थिति एवं अनाथावस्थामें दयाराममें कुछ उच्छृंखलता आ गई होगी। एक मुनाफिनके घरे दाल भातके कारण उस मुनाफिन तथा उनके पतिके रोष वचनोंके लिए उन्हें चाणोदम भाग जाना पड़ा था।

बचपनमें ही दयारामको वैष्णव गुरुसे संस्कारोंका लाभ मिला था। परिणामस्वरूप बचपनसे ही उनका झुकाव भजन कीर्तनकी ओर था। इस परिस्थितिमें डाकोरवासी प्रसिद्ध इच्छाराम भट्टजीका समागम दयारामके भावी जीवनको बनानेमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। गुरुजीने उस प्रकार प्रेरणा और मार्गदर्शनसे दयारामकी भक्ति भावना उभार दिया और इष्ट भगवानकी कविताओंको रचने ज्ञान तथा सत्य आत्म जीवनका मार्ग दी।

दयारामकी मुक्तक तथा भक्ति रहस्यका निरूपण करनेवाली साम्प्रदायिक कृतियोंमें अन्तर्हित शास्त्र ज्ञान और सिद्धान्त प्रमुखके मूलमें उनके अध्ययन और मननका ही फल रहा होगा। परन्तु इच्छाराम भट्टजीसे प्राप्त की हुई दृष्टि और दिशाका भी उसमें समन्वय हुआ होगा। भट्टजीकी प्रेरणासे दयारामने भारतकी तीर्थयात्रा की। उन्होंने तीन बार भारतकी और भी नाथद्वारकी तो सात बार यात्रा की थी।

दयारामकी जवानीके अनेक वर्ष इस प्रकार यात्रामें ही व्यतीत हुए। इस तीर्थाटनमें उनकी भक्ति और भगवत्शरण भावकी कसौटीके रूपमें और उसे पुष्टि करनेवाले कई अनुभव प्राप्त हुए। यह उनकी मारवाड़ी मराठी पंजाबी बिहारी सिन्धी और उर्दू काव्य रचनाओंसे समझा जाता है कि तीर्थाटनके कारण दयारामको दूसरी प्रादेशिक भाषाओंका भी परिचय हुआ होगा। दयाराम व्रजभाषाके अच्छे ज्ञाता थे और उसमें उन्होंने लिखा भी बहुत है।

दयारामके जीवनका उत्तरार्द्ध डभोईमें बीता। यहाँ उनकी कीर्ति उत्तरोत्तर भक्त कविके रूपमें बढ़ती गई और उनके इर्द-गिर्द भावुक प्रशंसक और भक्तोंका एक वृन्द जमा होता गया था। उत्तरावस्थामें छोटी-बड़ी बीमारियों तथा क्रमशः बढ़ती हुई आँखकी कमजोरीमें भी वे कीर्तन करना कभी चूकते न थे और नए-नए पदोंकी रचना करते थे। इनकी जीवन लीला ई. सन् १८५२ के प्रारम्भमें समाप्त हुई।

दयाराम आजीवन अविवाहित रहे। बचपनमें उनकी मँगनी (सगाई) हुई थी परन्तु वह कन्या बाल्यावस्थामें ही मर गई। उसके बाद दयाराम भी अनाथ बन गए, इसलिए कई वर्षों तक नई मँगनी (सगाई) का कोई योग ही सम्भव न था। नई सगाईका जब प्रसंग आया तब तक तो दयारामने अपरिणीत रहकर भक्तके रूपमें जीवन व्यतीत करनेका निर्णय कर डाला था। पुष्टि सम्प्रदायकी रीतिके अनुसार छोटी उम्रमें बड़ा सम्मान प्राप्त करनेवाले दयारामने अदध्याहित अपनी उम्रमें पक्की वैष्णव मर्यादा स्वीकृत कर ली थी। दयारामके नितान्त एकाकी जीवनमें आयुके उत्तरार्द्धमें एक स्त्रीने सेविकाके रूपमें प्रवेश किया। उस स्त्रीका नाम था रतनबाई। इस विधवा दुखिया सुनारिनने दयारामके दिए गए आश्रयके बदलेमें दयारामके घरको सम्हाला। वह प्रति दिन पूजा सामग्री तैयार करती और उनकी बीमारियोंके दिनोंमें सेवा-शुश्रूषा करती। अन्तिम वर्षोंमें दयारामकी आँखकी कमजोरी जब बढ़ती गई तब उनके स्वभावको बरदाश्त करके भी वह उनके सहारेकी लकड़ी बनकर सेवा करती रही।

दयारामके जीवनी लेखकोंने उनकी आकर्षक कान्ति मधुर कण्ठ वैरागियों जैसी पोशाक प्रियता स्त्रियोंमें लोकप्रियता गायन-वादन कौशल कुशल गायक वादकके प्रति सम्मानकी भावना अनन्य कृष्णाश्रय पुष्टि सम्प्रदाय-निष्ठाका उल्लेख किया है। इतना होते हुए भी जीवनी लेखकोंने सम्प्रदायके समकालीन गुसाईं

महाप्रभुके प्रति अनास्था आत्माभिमानके सामने एक-दो महाराजाओंकी उपेक्षा आत्माभिमान विशाल होनेपर भी मृत्युके बाद अपनी पादुका पूजनेके बारेमें आस्तिक नम्रता शिष्य वत्सलता अपनी कविताके लिए उच्च अभिप्राय तथा अन्तिम बीमारीके समय भविष्यकी चिन्ताका उल्लेख किया है। इन बातोंके आधारपर हमारी आँखोंके सामने दयारामकी जो मूर्ति खड़ी होती है वह हाफिज और बायरन जैसी रसिक तथा अलमस्त प्रतीत होती है, और साम्प्रदायिक वैष्णवोंको वह मूर्ति एक आदर्श भक्त कवि सरीखी ज्ञात होती है। दयारामकी समस्त रचनाएँ उनकी दूसरे प्रकारकी मूर्तिकी झाँकी उपस्थित करती हैं।

केशवलाल ध्रुवने कवि शामलके पश्चात साहित्य निर्माणकी दृष्टिसे शुष्क कालका उल्लेख करते हुए दयारामके बारेमें लिखा है —

"इस शुष्क कालमें एक ही वेलि नव पल्लवके पुष्प होकर नयन और हृदय शीतल बनाती है। वह नर्मदा तटपर पैदा होते हुए भी अन्य देश और कालका रस पीकर फूली-फली है। इस नरसिंह भालण और प्रेमानन्दका प्रसाद परिणय दयाराम की वाणीमें पाते हैं। वह अलमस्त कवि किसीका कर्जदार नहीं रहा। नरसिंह मेहताके नामसे नया पद जोड़कर, भालण की "वयम कोला" का अपनी वाणीमें मान करके और प्रेमानन्दके "ओखा हरण"में पर्याप्त सम्वर्धन करके दयारामने बहीखाता चुका-सा दिया है।"

दयारामकी काव्य-सेवा इतनी ही नहीं है बल्कि वह तो उसका एक अंश मात्र है। उन्होंने सैकड़ों ही नहीं अपितु सहस्रों पद भी बनाए हैं। उनके प्रशंसकोंने पदोंकी संख्या सात लाख तक बताई है। उनकी छोटी-बड़ी पुस्तकोंकी संख्या भी सात सौसे ऊपर चली जाती है। उसमें गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों कृतियोंका समावेश होता है। कहा जाता है कि उन्होंने संस्कृत और मराठी पञ्जाबी उर्दू मारवाड़ी बिहारी और सिन्धीमें भी कुछ रचनाएँ की हैं। उनकी गद्य रचनाएँ भी मिली हैं।

दयारामकी इस विपुल साहित्य-राशिमें अधिकांश सिद्धान्तात्मक है। उसमें कविने अपनी निष्ठा विषयक पुष्टि सम्प्रदायका वेदान्त मत शुद्धाद्वैतका जिसे ब्रह्मवाद भी कहते हैं और उस सम्प्रदायके भक्ति सिद्धान्तका शास्त्रीय किन्तु लोक सुलभ रूप निरूपण किया है। उनके इस प्रकारके साहित्यको सम्प्रदायवादी साहित्य भी कहा जा सकता है। "रसिक रंजन" "भक्ति विधान सिद्धान्त सार" "सम्प्रदाय सार" और "पुष्टि पथ सार मणि दाम" जैसी ब्रजभाषामें लिखी गई रचनाएँ एवं "रसिक वल्लभ" "भक्ति पोषण" और "पुष्टिपथ रहस्य" जैसी गुजराती कृतियाँ इसी प्रकारकी हैं।

गुजराती रचनाओंमें "रसिक वल्लभ" सर्वश्रेष्ठ है। ब्रजभाषाके "रसिक रंजन" तथा भक्ति विधान" क्रमशः "रसिक वल्लभ" तथा "भक्ति पोषण" नामकी गुजराती कृतियोंकी ब्रजभाषामें आवृत्ति मात्र प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार भक्तिकी महिमा तथा उसका शास्त्र समझानेवाले कवि दयाराम भक्त कवि बने। उन्होंने "श्रीकृष्ण नाम माहात्म्य मञ्जरी" जैसी गुजराती कृति तथा "श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका" "नाम प्रभाव बत्रीसी" जैसी व्रजभाषा कृतियोंमें भगवन्नामकी महिमा गाई। "भक्तपद" और "चौरासी वैष्णवना धोल" जैसी गुजराती रचनाएँ तथा "पुष्टि भक्त रूपमालिका" जैसी व्रजभाषा कृतियोंमें सम्प्रदाय सम्मान्य भक्तोंका नाम-संकीर्तन किया है। वे "श्री हरिभक्ति चन्द्रिका" जैसे काव्यमें भक्तोंकी संक्षिप्त कथा कहते-कहते भक्तका लक्षण बताते हैं। वे "ब्राह्मण भक्त विवाद नाटकमें-प्रश्नोत्तर संवाद काव्यमें-अभक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा वैष्णव भक्तको श्रेष्ठ घोषित करते हैं। "मीरां मन मोहन शुं मान्यु" टेकवाला प्रख्यात "मीरां चरित्र" गाते हैं। "कुंवर बाईनुं मामेरुं" काव्यमें नरसिंह मेहताकी भक्तिकी महिमा वर्णन करनेका अवसर निकाल लेते हैं।

दयारामकी ऐसी भगवद्गुणानुवादात्मक साहित्यकी कितनी ही कृतियाँ आख्यानात्मक हैं। उनका मुख्य आधार ग्रन्थ भागवत है। उसीके आधारपर उन्होंने "रुक्मिणी विवाह" "रुक्मिणी सीमन्त" "सत्यभामा विवाह" "नन्द चोरी विवाह" "अजामिल आख्यान" इत्यादि रचनाएँ की हैं। इन कृतियोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दयाराममें प्रेमानन्दकी भाँति आख्यान पटुता नहीं है।

दयाराम गरबा शैलीमें रचित अपनी "श्रीकृष्ण जन्म बधाई" स्थान स्थानपर सरस वर्णनोंसे सिक्त कृष्ण चरित्रात्मक "सारावलि" तथा "बाल-लीला" "पत्र लीला" "कमल लीला" "रास लीला" "रूप लीला" "मुरली लीला" तथा "दाण चातुरी" जैसी कृष्णलीला विषयक पद्यावलियोंमें विशेष सफल हुए हैं क्योंकि इन ग्रन्थोंका विषय उनके परमोपास्य श्री कृष्णकी लीला है। इन काव्योंमें दयारामकी रसिकता तथा कल्पनाने उनसे भागवतकी अपेक्षा भिन्न रीतिसे भी निरूपण कराया है जैसे— "कमल लीला" में दयारामने निरूपण किया है कि कंसने काली नागवाली यमुनाकी धारामें विकसित कमल लानेके लिए नन्दरायको आदेश दिया। उसका पालन करनेके लिए कृष्ण उस धारामें कूद पड़ते हैं। "मुरली लीला" में नित्य ही कृष्णके अधरपर रहनेवाली मुरलीपर ईर्ष्या करनेवाली राधिका तथा गोपियाँ बाँसके सारे वनोंको जलाकर खाक करनेकी इच्छा करती हैं। "रूप लीला" में ललिता द्वारा अनेक रूपधारी कृष्णका सच्चा स्वरूप जाननेकी राधाकी युक्तियाँ तथा उनकी निष्फलताका उल्लेख है। श्रीकृष्णकी तरह ही राधा सम्बन्धी काव्योंमें "राधाजी ना विवाह धोल" "राधिकाना बधाव" तथा "राधिका का स्वप्न" जैसे ग्रन्थोंमें दयारामकी कवित्व-रसिकता और कल्पनाका सुन्दर निर्वाह हुआ है।

दयाराम रचित प्रेमरस गीता तथा प्रेम परीक्षा रचनाएँ भी हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। दोनोंके विषय भागवतके भ्रमर गीतके उद्धव सन्देश तथा उद्धव गोपी संवाद हैं। उद्धवने गोपियोंको ज्ञान दृष्टि द्वारा सर्व

व्यापक, निराकार, परम चैतन्य श्रीकृष्ण स्वरूपका ध्यान करने तथा उनके दर्शन-मिलनका मोह त्याग करनेका उपदेश दिया है। यह उपदेश गोपियोंके हृदयमें प्रविष्ट न हो सका। वे तो श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व समझती और कहती हैं—

तमारा तो हरि सघळे रे, अमारा तो एक स्थळे,
तमे रीझो चांदरणे रे, अमो रीझुं चन्द्र मळे,
इन्दुने अवलोकी रे चकोर नुं चित्त ठरे,
प्रकाशने देखी रे कहो शुं सन्तोष धरे ?

—(प्रेम परीक्षा)

[तुम्हारा हरि सर्वत्र है। हमारा तो एक स्थानपर है। तुम चाँदनीपर रीझते हो और हम चन्द्रपर रीझती हैं। चन्द्रमाको देखकर चकोरका चित्त शीतल होता है। वह भला प्रकाशको देखकर कैसे सन्तोष धारण करे ?]

ज्ञान देनेकी कामनासे आए हुए उद्धव प्रेम-पगी गोपियोंके भक्त और मर्मज्ञ बनकर वापस लौटते हैं। ज्ञानसे प्रेम तथा भक्तिको श्रेष्ठ प्रतिपादित करनेवाले इस काव्यकी पंक्ति पंक्तिमें मूर्त होनेवाली गोपियोंकी असीम कृष्ण प्रीतिसे नवीन रस परिपूरित हो उठा है।

दयारामके कृष्ण काव्यात्मक साहित्यमें रचनाकी दृष्टिसे उनके गरबी नामक पद अधिक आकर्षक हैं। दयारामकी प्रतिभा आख्यानकाव्यकी अपेक्षा ऊर्मिगीत गायनकी ही है। ऐसे तो उनके समस्त साहित्यके एक छोटे छोटेसे भाग होते हुए भी गरबियोंके उच्च शिखरका दर्शन कराते हैं और दयारामकी सच्ची कवि-सिद्धि बन गए हैं। यों तो नरसिंह तथा भालणके समय से ही पद रचना होती आ रही थी किन्तु दयारामने उसमें विविध राग-रागिनियोंका समावेश करके पद काव्यको समृद्ध किया है और सुशोभित बनाया है।

इन गरबियोंका विषय राधा और गोपियोंका उत्कट कृष्ण प्रेम और भी कृष्णकी गोपियोंके साथ की गई लीला है। इनमें दयारामने आँखोंके सामने व्रजका चित्र ही उपस्थित कर दिया है। कविने स्वयं गोपियोंसे तादात्म्यका अनुभव कर कोई एकाध कृष्णकी मतवाली व्रजांगना बन कृष्ण रसिकको विविध रीतिसे भाव-विभोर होकर गाया है। तभी ये पद इतने सरस बन सके हैं। अनेक गरबियोंकी योजना इस प्रकार की गई है मानो उसमें गोपियोंका भाव सम्बोधन उनके ही उद्‌गारके रूपमें प्रकट हुआ हो जिसने उनके हृदयपर जादू किया है उस भावविभोरताका रूप तो देखो.—

शिव श्याम मोहनी न जाणी रे मोहनजी माँ क्यों हामे।
भाज गई ती कर्णलगी तीर रे भरवाने पाणी
शोभा सलूणा श्याम नी तूं जाणे तन। शोभा सलूणा श्यामनी
कामण दीसे छे अलबेला तारी आंखमां रे।

दे छे रे बहुजी रहो ढंग' (सासुजी उपदेश देती है कि बहूजी ढंगसे रहो।) वैसे पदमें सासूकी फटकार और "वृन्दावनकी बाट रमीशुं रंग" (वृन्दावनकी राहपर रंग खेलेंगी) के रूपमें साफ शब्दोंमें बहुधा उत्तर पेश करती हुई गरबियाँ गोपांगनाओंकी उत्कट कृष्ण-भक्तिका आलेखन करती हैं। ऐसी उत्कट कृष्ण-भक्तिमें औरको हिस्सेदार बनाना भला किसे पसन्द होगा? इसीलिए कृष्णानुरागी व्रजनारीको ऐसी हिस्सा बटानेवाली वस्तु सौतके समान प्रतीत होती है। वह कहती है —

मानीती तुं छे मोहन तणी हो वांसलडी।
[हे बंसी! तू मोहनकी प्यारी है।]

ओ वांसलडी! वेरण थई लागी रे व्रजनी नार ने।
[हे बंसी! तू व्रजनारियोंकी बैरन हो गई है।]

इन गरबियोंकी कल्पना कितनी रसिक है!

दयारामने कन्हैयाके ऐसे ही प्रेमका अनुभव करनेवाली भक्ति-विह्वला किसी गोपीको सम्बोधित करते हुए एक गरबीमें लिखा है— फूली अलबेली वाल्या वहाला फूली अलबेली।

इस गोपीका भाव कितना मनोरम है —

चांदलिया रे चालीश मा, मति उतावळो।
[हे चन्द्रमा! तुम जल्दी मत चलना।]

भाव्यो मनतो मोहनवर, पामियाँ छो रे।
[जो मनको पसन्द है ऐसा मोहन हमें वरके रूपमें मिल गया है।]

ऐसी स्वाधीन-पतिका सम्भोगकी स्मृतिके साथ अपने सुखद अनुभवको किस प्रकार गाती है उसे "हुं हुं जाउं वहाले मुज मां शुं दीठुं" गरबीमें सुन्दर ढंगसे अभिव्यक्त किया है। ऐसी गोपी प्रियतमसे प्रेम करनेके साथ मान भी करती है। दयारामने इन भावोंको प्रकट करनेवाली गरबियाँ भी लिखी है —

श्याम रंग समीपे न जाउं मारे आज थकी श्याम रंग समीपे न जाउं।

[मैं आजसे श्याम रंगके समीप नहीं जाऊँगी श्याम रंगके पास भी नहीं जाऊँगी।]

माने तमारे ते मोकर छबीला, कहयुं माने तमारे ते बोलडं।

[वह मतवाला छबीला तुम्हारी बात मानता है, तुम्हारा कहना वह मतवाला मानता है।]

दयारामने स्थान-स्थानपर विनोद चातुर्य-लहरी भी प्रवाहित की है। ऐसा चातुर्य "मुजने मळतो मा शामा रह्यो सखीना छेलो मळतो मा" जैसी गरबियोंमें दृष्टिगोचर होता है। "कहान कुंवर काला छो मळतां हुं काली थयी जाऊँ" कहनेवाली राधिकाको कृष्णका उत्तर देखिए —

तुं मुजने मळतां श्याम थईश तो हुं श्याम नहि थाउं गोरो?
फरी मळतां रंग अदला बदली, मुज गोरो तुज तोरो
[यदि तू मुझसे मिलकर श्याम होगी तो मैं गोरा क्यों नहीं होऊँगा? फिर मिलनेपर रंग बदल-बदलकर मेरा तुझे और तेरा मुझे मिलेगा।]

इस प्रकार एकके बदले दो बार आलिंगनका लाभ ले-लेते हैं।

इसी प्रकार कृष्ण गोपीका वाग्युद्ध देखते ही बनता है —
आठ कुवाण नव वावडी रे लोल।
[आठ कुँए और नव बावड़ियाँ हैं।]

वांकारे बोला शुं रे होलो छो? आवडं शुं रे गुमानजी?
[तुम कैसे बांके-बांके चलते हो? ऐसा क्या गुमान है?]

नेण नचावता नटवा कुंवर पाछेरे चले आ।
[हे नट कुंवर! अपने नेत्र नचाते हुए पीछे पीछे चला आ।]

श्याम सलजता रहो कहुं छुं शिखामण तो मानी लो।
[हे श्याम! तुम सीधे रहो मैं जो सीख दे रहा हूँ उसे मान लो।]

इन गरबियोंमें दयारामने कृष्णको नटखट और चतुर रसिक करके रूपमें चित्रित किया है। मानिनी राधाके साथ अथवा प्रणय मान प्रकट करनेवाली अन्य गोपियोंके साथ कृष्णकी चाटूक्तियाँ देखिए —

राधे तुं प्यारी बे बीजुं अवर न कोई॥
[हे राधे! तू ही प्यारी है दूसरी कोई प्यारी तेरी जैसी नहीं।]

कर्कशा वचन शाने बोले छो मानिनी तुं मनमां।
[हे मानिनी! तू कर्कश वचन क्यों बोलती है?]

तारा सम को नारी तुं मने सर्वथी वहाली रे।
[हे तन्वी! तेरी समान है तू मुझे सबसे अधिक प्रिय है।]

इन गरबियोंमें कृष्णका दाक्षिण्य कितना सुन्दर चित्रित हुआ है। इसी प्रकार "साजन रे तूं सजनी मारो रजनी क्या रमी आवी जी" जैसे सखीके संवादों-वाली गरबीमें तथा "हृदयमध्ये कई साथे मधुरामां" रसीला रंग भर क्यां रमी आव्या लाल कोनी साथ चोरी लाव्या" आदि कृष्णको सम्बोधित करनेवाली गरबियोंमें भी राधा और गोपियोंकी आकृतिमें कृष्ण-विरह विविध प्रकारका रंग भरता है —

सखी हुं तो जाणती जे सुख हुशे स्नेहमां।
[हे सखी! मैं जानती थी कि स्नेहमें सुख होगा।]

मुजने अंग अंग लागी लाहा कालज कोई कापे रे।
[मेरे अंग-अंगमें आग लगी हुई है। कोई कलेजेको काट रहा है।]

प्रेमनी पीडा ते कोने कहीये मधुकर प्रेमनी पीडा।
[हे मधुकर! प्रेमकी पीड़ा कहो किससे कहें?]

कृष्णके व्रज गमनके बाद गोपियोंकी विरह वेदना प्रकट करनेवाली गरबी देखिए —

ओ ओधवजी वहाले तो विसारी अमने मेल्या
[हे उद्धव! प्रियतमने मुझे बिसार दिया।]

उद्धव नन्दनो छोरो ते नमेरो थयो जी
[हे उद्धव! नन्दका छोकरा निर्मोही हो गया है।]

उद्धवजी, माधवने कहेजो एटलुं
[हे उद्धव! माधवसे इतना कहना]

उद्धवको सम्बोधित करनेवाले ये पद तथा "प्रेम रस गीता" व "प्रेम परीक्षा"के पदोंको छोड़कर (प्रेम-परीक्षा भी ऐसी गरबी ही है।) गोपियोंके विरह सम्बन्ध हृदयकी भावोर्मियां ऐसे काव्यको हृदयस्पर्शी बनाती है।

राधा तथा गोपियोंके एवं कृष्णके उद्‌गार प्रकट करनेवाले अनेक नाट्यात्मक ऊर्मि-काव्य (lyric poetry) हैं किन्तु ऐसी भी गरबियां दयारामकी लिखी हुई मिलती हैं जिनमें कवि वर्णन करता हुआ पाया जाता है। नीचेकी रचनाएं इसी कथनका प्रमाण है —

गरबे रमवाने गोरी नीसरी रे लोल
[व्रजकी गोरियां गरबा नृत्य करने निकल पड़ीं।]

राधे ! रूपाळी, रसीली तारी आंखडी जो
[हे राधे ! तेरी आँख सुन्दर और रसीली है।]

वागे वृन्दावनमां वांसळी रे ऊभो ऊभो वगाडे कान
[वृन्दावनमें बंसी बज रही है कृष्ण खड़ा-खड़ा बजा रहा है।]

हां रे वृन्दावनमां थनक्कार थै थै
[हाँ, वृन्दावनमें थेई-थेई नृत्य हो रहा है।]

इसमें दयारामके कवित्व रसिकता चित्रात्मक वर्णन तथा छन्द प्रभुत्वकी प्रतीति होती है। राधाका रूप-वर्णन अन्य अनेक गरबियोंका भी विषय बना है।

इस प्रकार दयारामने शृंगारिक भक्तिभाव राधा गोपियों तथा कृष्ण सम्बन्धी सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकारकी भिन्न भिन्न परिस्थितियोंकी कल्पना की है। उन्होंने प्रियतम कृष्ण तथा उनकी व्रज प्रेमिकाओंके वैविध्यपूर्ण भाव-सम्वेदनाओं और अनुभवोंको गरबियोंमें उमंगित होकर गाया है। उन्होंने इससे कृष्ण-लीला गायनका सन्तोष प्राप्त किया है और गुजरातीको सुन्दर पद-साहित्यसे समृद्ध भी बनाया है। उनके गीत पदोंमें विविध प्रकारके राग और तालोंकी बहार है संक्षिप्त रूपमें गाढ़ भावसे अभिव्यक्त होनेवाली कृष्ण-लीला गोपियोंके हृदयकी सुकुमार और उत्कृष्ट भावोर्मियाँ है संगीत तथा भावोंके अनुरूप माधुर्य अंकित वाणी है उनमें कवि उल्लासपूर्ण भक्ति-रसके साथ चमत्कार चातुर्य तथा विनोदसे परिपूर्ण लहरियाँ उत्थित करता है। इस प्रकार ऊर्मि गीतोंके उत्तम नमूनाको प्रकट करनेवाली दयारामकी गरबियाँ नरसिंह और मीराके बादकी भक्ति शृंगारमयी मध्यकालीन पद रचनाकी पराकाष्ठा कही जा सकती है।

इन गरबियोंने ही दयारामके बारेमें क्रमशः गोवर्धनराम न्हानालाल तथा श्री मुन्शीजीको नीचे लिखे स्तुति-वचन कहनेके लिए बाध्य किया है —

"So far as poetical powers are concerned, he is undoubtedly the greatest genius since the days of Premanand His poems on Krishna and the maids of Gokul are a stream of burning lava of realistic passion and love and if lewdness of writings do not take away from the merits of a poet he is a very great poet indeed He has a weird and fascinating way of bodying forth a host of over fondled spirits of uncontrollable will in a language which is not only atonce

popular and poetical, but drags society after him to adopt, as popular, the language he creates for them anew He introduces the men and women of his country to a luxuriance of metres, whose wild music makes them bear with the flame of his sentiments, and there is a subtle naivete in everything that comes out from him.

[गोवर्धनराम Classical Poets of Gujarat -pp 67-8]

गुर्जरी साहित्य कुञ्जको मरकर बंसीका राग छेड़नेवाला यदि कोई है तो दयाराम। जिस बंसीको कृष्णने व्रजमें वल्लभाचार्यजीने गोकुलमें बजाया था उसी रससौन्दर्यकी अमृत बंसीको दयारामजीने नर्मदा तटपर बजाया। दयारामजीकी गरबियोंकी कल्पनामें मानो बिजलीकी चमक है मानो वे नर्मदाके मीठे जलकी रस-सरिताके हृदयकी पवन परिप्लुत लहरियाँ हों मानो वे दयारामजीकी गीत-माया हों। दयाराम अर्थात् गुजरातका माधुर्य-गुञ्जन चमक विद्युल्लता। जगत भरके साहित्यमें गुजरातके नारी संगीतका गुजरातकी गरबियों तथा गुजरातिनके रासका स्थान सदा अनुपम है और उन गरबियोंके सम्राट् गुजरातिनके हृदयराज दयारामका भी स्थान अपूर्व है .. उनकी एक-एक गरबी गुजरातका मूल्यवान रस-मोती है।

[कवि न्हानालाल आपणा सागर रत्न—२]

“भाषाकी संस्कारिता समृद्धि अथवा संगीतमें भावोंके जादू अथवा प्रवाहमें भाव-वैविध्यकी रंगबिरंगी चमकम हृदयवेधक शब्द-माधुर्यकी मोहनीमें प्रणय-पिपासाकी तीव्रतामें गुजराती साहित्यका कोई कवनकार इन्हें (दयाराम) स्पर्श नहीं कर सका। यदि “चातुरी छत्तीसी” अथवा “रास सहस्र पदी” ग्रन्थ नरसिंह मेहताके रचे माने जाएँ तो नरसिंह मेहताको छोड़ गुजरातने प्रणय-गानका गायक केवल एक दयाराम ही पैदा किया है।

[कन्हैयालाल मुन्शी मध्य कालना साहित्य प्रवाह पृ १८९]

आगे भी मुन्शीजी लिखते हैं—“दयाराम यों तो भक्त कहे जाते हैं किन्तु वे सदा कवि ही हैं। उनके काव्य भक्ति-साहित्य कहे जाते हैं किन्तु वे मानव प्रेमके भक्ति साहित्यके उदाहरण हैं। जिस युगमें भक्त कहलाये बिना भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी उस जमानेमें उन्हें भक्त होना पड़ा। उस जमानेके भक्तिके कृत्रिम आडम्बरमें अन्तर्हित प्रणय मूर्तिके लिए प्रेम गीत गानेवाले वे कविवर थे।

वस्तुतः दयारामकी गरबियाँ भक्ति शृंगार भागवत तथा गीतगोविन्द प्रणालीपर रची गई हैं। गुजरातमें इस प्रणालीकी कविताएँ नरसिंह मेहतासे राम तक रची गई हैं। दयाराम पुष्टि-सम्प्रदायके वैष्णव थे। वे रसेश कृष्णको पुरुष मानकर उन्हें गोपी भावसे भजनेकी प्रणालीके पुजारी थे। “एक वया पीजन वल्लभ नहि स्वामी बीजा के दृढ़ निश्चयी थे। मानिनी राधाको मनाकर हें प्रसन्न करनेवाले कृष्णकी लीला गाते हुए एक पदमें “ए कम्पलीनी दासी थावाने स दया भुग पाए” और दूसरे पदमें तमे दया सखीने मन भावजो कहते हैं। एक कवि थे इसलिए उनकी रसिकता तथा कल्पनाने अत्यधिक प्रगल्भतासे धा-कृष्ण विहारके आलेखनको अधिक विलासपूर्ण बना दिया है। उन्होंने सच्चे वस यह माना है कि स्वयं अपने स्वामी—दया प्रीतम—की लीला अभि-नय गा रहे हैं।

उनकी कृष्णभक्ति सच्ची है, उसमें अन्तरको देखनेवाला कोई पर्दा नहीं है। वि न्हानालालने एक स्थानपर लिखा है कि यदि राधा-कृष्णका रसकीर्तन गाना विषय-लम्पटता माना जाय तब तो स्वामीनारायण सम्प्रदायके परम साधुवर नाथारो कहे जाएँगे। इसी सम्बन्धमें उन्होंने दयारामको गुजरातकी गोपी कहा। सचमुच यही उचित मर्म है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि दयाराम पनी गरबियोंमें अपनी रस-रुचिकी मर्यादाओंके साथ गुजरातके जयदेव बन गए। उनके शृंगारकी स्थूलतासे नरसिंह मेहताका शृंगार कम स्थूल नहीं है। नरसिंहने हरि लीला षटगार ज गावा विषयी नहि कहेवाय” कहकर अपने कवनकी पादेयता जिन पद्योंमें प्रतिपादित की है वैसा ही दयारामने भी कहा है —

केमे कामने मोह पमाड्या रे ते प्रभु कामवश केम थाये ?
[जिसने कामदेवको मोहित किया वह प्रभु कामवश कैसे होगा ?]

कृष्ण क्रीडा रस गातां रे, कामरोग दूर थी जाय
[कृष्ण क्रीडा-रसको गाते-गाते हृदयसे कामरोग दूर हो जाता है।]

यह स्मरणीय है कि दयारामके इन शब्दोंपर विश्वास करके उनकी अनेक गरबियाँ समस्त गुजरातमें स्त्रियाँ निःसंकोच भावसे गाती हैं। उनके भक्ति वैराग्यके पद तथा दीनतासे भरी प्रार्थनाएँ सबके अन्तर हृदयको नित्य उत्प्लावित करती हैं।

यदि दयारामका सच्चा हृदय देखना हो तो हमें उनके प्रार्थना काव्योंको देखना चाहिए। हृदयके सहज भाव स्वरमें उन्होंने गाया है कि —

जेवो तेवो हु दास तमारो करुणासिन्धु ग्रहो कर मारो
[हे करुणासिन्धु[1] जैसा भला वैसा मैं तुम्हारा दास (सेवक) हूँ। मेरा हाथ पकड़ लो।]

हरि हुं शुं करूं रे ? मारी माया न मूके केडो ?
[हे हरि ! यह माया मुझे छोड़ नहीं रही है। मैं क्या करूं ?]

दामोदर दुखडां कापो रे पायने लागुं
[हे दामोदर ! मैं तुम्हारे पाँवोंमें पड़ता हूँ मेरे दुख दूर करो।]

कृपा सिन्धु कहावो छो, कृपा मने केम ना करो ?
[आप तो कृपासिन्धु कहे जाते हैं, फिर मुझपर कृपा क्यों नहीं करते ?]

दर्शन दोनी दासने मारा गुणनिधि गिरधरलाल
[हे मेरे गुणनिधि गिरधरलाल ! इस सेवकको दर्शन दीजिए न।]

आरे अन्त समये अलबेला मुजने मूकशो मा
[हे अलबेला ! मुझे अन्तिम समय छोड़ न देना।]

इस प्रकार भक्ति-आर्द्र प्रार्थनाओं द्वारा दयारामने प्रभुको याद किया है। ऐसे पद उन्होंने सर्वाधिक लिखे हैं। "विज्ञप्ति विलास" के पदोंमें वर्णित भावों द्वारा अपने स्खलन और अपात्रताको स्वीकार करके प्रभुकी कृपा याचना करनेवाले दीन भक्तकी मूर्ति हमें सच्चे दयारामकी झाँकी कराती है। यह दीनता अपनेको "हडाया पशु" कहकर वर्णन करनेवाले उनके विख्यात पदोंमें भी दिखाई देती है। जीवन-लीला समाप्तिके उनकी प्रतीतिके अवसरपर रचा गया यह पद "मनजी मुसाफर रे चालो निज देश भणी" हमारे मनमें जिस ज्ञानी भक्तराजकी मूर्ति खड़ी कर देता है वह आदरणीय है।

नीचे लिखे पद भक्ति और भक्तिरस छलकनेवाले प्रेमार्थी जनोंका गौरव व्यक्त करते हैं और भक्तिका मार्ग भी बताते हैं —

जो कोई प्रेम-अंश अवतरे प्रेमरस तेना उरमां ठरे
[जो कोई प्रेम अंशमें अवतीर्ण होता है उसके हृदयमें प्रेमरस स्थिर होता है।]

जेना हृदयमां अखंड रतिरूप तेने कांई नथी करवुं रे
[जिसके हृदयमें रतिरूप भगवानका अखण्ड वास है उसे कुछ करना नहीं है।]

प्रगट मळ्ये सुख थाय सौ गिरधर प्रगट मळ्ये सुख थाय
[भगवानके प्रत्यक्ष मिलनेसे सुख मिलता है। श्री गिरधरके प्रत्यक्ष मिलनेसे सुख मिलता है।]

लोचन मनतो रे के झघडो लोचन मननो
[लोचन और मनका झगड़ा है।]

निश्चयना महेलमां वसे मारो व्हालमो
[निश्चय करी महलमें मेरे प्रियका वास है।]

हो मनवा श्री हरि शरण रहेजे
[हे मनुवा! श्री हरिकी शरणमें रहना।]

हरिदासा हरिदासा बन जा हरिदासा
[हरिदासा हरिदासा तू हरिदासा बन जा।]

साचुं ते सगपण रे समज मन श्याम तणुं
[हे मन! श्यामको ही तू सच्चा सगा स्नेही समझ ले।]

दयारामने उपर्युक्त पदोंके साथ-साथ अनन्य भक्ति तथा शरणागतिका उपदेश देनेवाले और हरिजनोंकी निन्दा न करनेका परामर्श देनेवाले पदोंमें ऐसे भक्ति मार्गका अनुसरण करनेवाले "ठाकुरजी जन" और "भगवदी" के लक्षण बतलानेवाले पद भी लिखे हैं। ठाकुरजी जन तेने जाणी ए रे" यह पद नरसिंहके "वैष्णव जन तो तेने कहिए" पदका स्मरण दिलाता है। अन्तरसे जो सच्चे वैष्णव न हो पाए हैं ऐसे मिथ्याचारियोंको अथवा कच्चे साधकोंको—

"तू अभी वैष्णव नहीं हो पाया है हरिजन नहीं हो पाया है
फिर अभिमानमें क्यों मस्त है?"
"तेरे मनमें जो कपट है यह कपट जब तक नहीं जाता
तब तक हरि तुझपर प्रसन्न कैसे हो सकते हैं?

ऐसे पदों द्वारा वे टोकते हैं और प्रेरणा देते हैं। वे ईश्वरसे विमुख बने हुए जीवोंको चेतावनी देते हैं —

"क्यों फूला हुआ फिरता है? तू अपना मार्ग भूल गया है
और भव-रूपी कूपमें पड़ा हुआ है।"
तेरा अमूल्य अवसर व्यर्थ ही चला जा रहा है। तू गोविन्दको गा ले!"

ऐसे पदोंमें पूर्ववर्ती भक्त कवियोंकी चेतावनीको दुहराते हुए भक्ति करनेका उपदेश दिया गया है। ऐसा उपदेशात्मक साहित्य दयारामने पदोंमें और लम्बी पदकृतियोंमें भी लिखा है। "मन मति मनुहार" "मन प्रबोध" प्रबोध बावनी" और "चिन्ता चूर्णिका" उनकी कृतियाँ हैं।

दयारामने व्रजभाषामें वस्तु वृन्द दीपिका" "सतसैया" और अन्य राग-ताल और पिंगल-विषयक जो कृतियाँ लिखी हैं वे दयारामके सामान्य ज्ञान शास्त्र-शास्त्रके ज्ञान और सद्रुचिके ज्ञानकी प्रतीति कराती हैं। "वस्तु वृन्द दीपिका" इसमें एक सौ आठ तरह की सम्भावोंके वस्तु समूहका पद्यबद्ध ज्ञानसंग्रह है। उनकी

पद्य रचनामें जो विप्रलम्भशृङ्गार और सम्भोगशृङ्गारकी कलात्मक और रस एवं नायिका भेदके निरूपणके साथ जो आन्तरिक भक्तिरस दृष्टिगोचर होता है उसकी प्रतीति "सतसैया" के सात सौ से अधिक दोहोंसे होती है और यह भी जाना जाता है कि इस भक्ति रसिक कविका व्रजभाषाकी कविता शैलीपर भी कितना अधिकार है।

इस "सतसैया" पर खुद दयारामने ही गुजरातीमें गद्य टीका लिखी है। उसके उपरान्त उन्होंने "हरिगुरु तारतम्य" "भागवतसार" "प्रश्नोत्तर माला" "क्लेश कुठार" (लघु और बृहत्) और "प्रश्नोत्तर विचार" जैसी कृतियाँ गद्यमें लिखी हैं। दयारामने गद्यकारके रूपमें कोई प्रशंसनीय सिद्धि प्राप्त नहीं की। "सतसैया" की टीकामें जो गद्य है वह वाक्योंकी सरलतासे समझानेवाले कथा वाचकोंकी व्याख्यान शैलीका गद्य है। गुजराती गद्यका वास्तविक निर्माण और साहित्य-क्षेत्रमें विकास तो दयारामके अवसानके बाद ही हुआ।

यों तो दयारामका साहित्य विशाल है, परन्तु गरबियोंमें ही उन्होंने वास्तविक सिद्धि प्राप्त की है। इन गरबियोंने ही उन्हें लोकप्रिय कवि बनाया है। उनकी गरबियोंमें कुछ ग्राम्य प्रयोग और अपने बनाए हुए शब्द-प्रयोगोंका बाहुल्य होने-पर भी उनमें उच्च कोटिका वाणी-माधुर्य तथा भाषा-प्रभुत्व भरा होनेके कारण उन्होंने गुजरातके जन-हृदयपर अधिकार कर लिया है। इन गरबियोंमें प्रयुक्त विविध राग-रागिनियोंके मीठे संगीतसे भागवत कालसे इस देशके लोक-हृदयमें मोहिनी पैदा करने वाले रसेश्वर कृष्णकी व्रजलीलाके चरित्र और शृङ्गार रसकी भूखको जगानेवाली कल्पनाओंसे और रसिक कवियोंको पूरी सुविधा देनेवाली काव्य-वस्तुसे तथा उस वस्तुके खुले मनसे उठाए गए लाभसे दयारामने गुजरातके जन-हृदयपर आसन जमा लिया है। दयारामकी गरबियोंको सुननेके लिए पेटलादसे डभोई जा पहुँचनेवाली नागर महिला का प्रसङ्ग उनकी गरबियोंकी लोकप्रियताकी प्रतीति कराता है। मधुर गानेवाली महिलासे "तेरा कण्ठ मुझे दे, मैं तो रचना मात्र ही कर पाता हूँ" कहनेवाले दयारामकी गरबियोंको केवल उसी एक ही महिलाका नहीं परन्तु गुजरातका समस्त नारी समाजका कण्ठ मिला है, जिसपर सवार होकर इन गरबियोंने अब तक गुजरातको गीतोंसे गुञ्जित रखा है। इन गरबियोंने अर्वाचीन युगके राष्ट्र लेखकोंको प्रेरणा और पाथेय प्रदान किया है।

जिस वैष्णव भक्ति कविताका आरम्भ नरसिंह मेहताके समयसे हुआ उसका अन्तिम उच्च शिखर दिखलानेवाली कविताके सर्जक इस वैष्णव नागर कविके अवसानके साथ गुजराती साहित्यका मध्यकाल समाप्त होता है और उसका अर्वाचीन युग प्रारम्भ होता है। गुजरातमें अर्वाचीन युगकी हवाकी लहरें दयारामके उत्तरार्ध से ही लहराने लगी थी। परन्तु उन लहरोंने पुरोगामी मध्यकालीन कवियोंकी प्रणालीमें मस्त इस कविको जरा भी स्पर्श नहीं किया। इसीलिए वे मध्यकालीन गुजराती साहित्यके अन्तिम तेजस्वी प्रतिनिधि बन पाए हैं।

• • •

दयाराम

[काव्य-सञ्चय]

१ पारणुं

माता जसोदा झूलावे पुत्र पारणे,
झूले लाडकडा पुरुषोत्तम आनन्दभरे
हरखी नीरखीने गोपीजन वारे वारणे,
अति आनन्द श्रीनन्दजीने घेर । माता० ॥१॥

हरिना मुखडा ऊपर वारुं कोटिक चन्द्रमा,
पंकजलोचन सुन्दर विशाल कपोल,
दीपक शिखा सरखी दीपे निर्मल नासिका,
कोमल अधर अरुण छे रातांचोळ । माता० ॥२॥

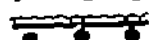
मेघश्याम कान्ति भ्रकुटी छे वांकडी
वीटलियाला भाल उपर झूमे केश,
हसतां दन्तुडी दीसे बेउ हीराकणी,
जोतां लाजे कोटिक मदन मनोहर वेश । माता० ॥३॥

सिंहनखे मढेलुं शोभे सोनानुं सांगलुं
नाजुक आभरण सघळां कन्चन, मोतीहार,
चरणअंगूठो चावे हरि बे हाथे ग्रही
कोई बोलावे तो करे किलकार । माता० ॥४॥

लाल ललाटे कीधो छे कुमकुम चांदलो,
शोभे जडित जाणे मरकतमणिनो लाल,
जमनी जुगते आंजे अंजियाळी बेउ आंखडी,
सुन्दर कायलकेरुं टपकुं कीधुं गाल । माता० ॥५॥

साव सोनानुं जडित मणिमय पारणुं,
झूमखे झमझम बोले घुघरी नो घमकार,
माता विविध वचने हरखे गाये हालरडां,
खेंचे फूमतियाळी रेशमदोरी सार । माता० ॥६॥

१ पालना



माता यशोदा पुत्रको पालनेमें झुला रही है। झूलेमें पुरुषोत्तम आनन्दसे झूल रहे हैं। गोपियाँ देख देखकर हर्षसे बलि बलि जाती हैं। श्री नन्दजीके घरमें अत्यन्त आनन्द छाया हुआ है ॥१॥

हरिके मुखड़ेपर करोड़ों चन्द्र न्योछावर कर दूँ। उनके नयन सुन्दर कमलोंके समान हैं और भाल विशाल है। निर्मल नासिका दीपशिखा जैसी दमक रही है और कोमल अधर गहरे लाल रंगके हैं ॥२॥

देहकी कान्ति श्यामल मेघकी-सी है भृकुटी बाँकी है उभरे हुए ललाटपर घुँघराले केश झूमते हैं। हँसते समय दो दन्तुलियाँ हीरकनीकी तरह दिखाई देती हैं और मनोहर वेशको देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते हैं ॥३॥

कृष्णके गलेमें सोनेसे मढ़ा हुआ बघनख शोभित हो रहा है। कञ्चन और मोतियोंके छोटे-छोटे आभूषण हैं। हरि अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर चरणका अंगूठा चूस रहे हैं। जब कोई झुलाता है तो किलकारी लगाते हैं ॥४॥

ललाटपर कुमकुमका लाल टीका लगाया गया है जो मरकत मणिमें जड़े हुए लालके समान सुशोभित हो रहा है। मीन कुशलतापूर्वक बाँकी आँखोंमें काजल और गालपर सुन्दर काजलकी टिपकी लगा दी है ॥५॥

मणियोंसे जड़ा हुआ पालना सोनेका है पूरे झुलानेपर उसमेंसे घुँघरुओंकी ध्वनियाँ झन-झना उठती हैं। माता विविध प्रकारसे लोरी गा गाकर हर्षित होती है और पलनेकी फुन्देवाली रेशमडोरी खींचती है ॥६॥

हंस कारण्डव म कोकिल पोपट पारणे,
बपैया मे सारस चकोर मेना मोर,
मुख्यां रमकडां रमवा श्री मोहनलालने,
घमघम घूघरडो बजाडे नन्दकिशोर। माता० ॥७॥

मारा कहानाने रमाण्यो कन्या लावीशुं,
मारा लालने परणावीश मोटे घेर,
मारो जायो वरराजा थई घोडे बेसो,
मारो कहानो करशे सवाय लीला ल्हेर। माता० ॥८॥

मारो लाडकवायो सखा सम रमवा जशो
सारी सुखलडी हु आपीश हरिने हाथ
जमवावेळा रमझुम करतो घरमां आवशे,
हु तो धाईने मीडीश हृदया साथ। माता० ॥९॥

जेनो शंकर शेष सरीखा पार पामे नहीं,
"नेति नेति ' कहे छे निगम वारम्वार,
तेने नन्दरानी हुलरावी गाये हालडां,
धन्यो, धन्यो, एना भाग्यतणो कंई पार! माता० ॥१०॥

व्रजवासी तो सर्वे थी सुभागी थयां
तेथी नन्दजशोदा केरं भाग्य विशेष,
ते सर्वेथी गोपीजननुं भाग्य अति घणुं,
जेनि करे प्रशंसा ब्रह्मा शिव ने शेष। माता० ॥११॥

धन्य! धन्य! व्रजवासी गोपीजन नन्दजसोमती!
धन्य! धन्य! वृन्दावन हरिकेरो ज्यां छे वास
सदा युगलकिशोर ज्यहां लीला करे,
सदा बलिहारी जाये दयो दास! माता० ॥१२॥

———

पलनेमें हंस कारण्डव, कोकिल तोता पपीहा, सारस, चकोर, मना मोरके खिलौने मोहनलालके खेलनेके लिए रखे गए हैं। नन्दकिशोर अपने घुंघरुओंको छम-छम बजाते हैं ॥७॥

माता यशोदा कहती हैं कि अपने कान्हाके योग्य ही मैं कन्या लाऊँगी और अपने लालको ऊँचे कुटुम्बमें ब्याहूँगी। मेरा बेटा बरराजा बनकर घोड़ेपर बैठेगा। मेरा कान्हा सदा ही आनन्द करेगा ॥८॥

मेरा लाडला अपने सखाओंके साथ खेलने आएगा। मैं हरिके हाथ अपने सारे सुखोंको सौंप दूँगी। वह भोजनके समय रुमझुम करता घरमें आएगा और मैं दौड़कर उसे अपनी छातीसे लगा लूँगी ॥९॥

जिसका पार शंकर और शेष जैसे भी नहीं पा सकते जिसे वेद बारम्बार नेति-नेति कहते हैं। उसे नन्दरानी झूला झुलाकर लोरियाँ गाती हैं। सचमुच उसके सौभाग्यकी कोई सीमा ही नहीं है ॥१०॥

ब्रजवासी सभीसे अधिक सौभाग्यशाली हैं। उनमें भी अधिक नन्द और यशोदाका सौभाग्य है। उन सबमें गोपीजनोंका भाग्य श्रेष्ठ है जिसकी प्रशंसा ब्रह्मा शिव और शेष भी करते हैं ॥११॥

ब्रजवासी गोपीजन, नन्द और माता यशोदा धन्य हैं। जहाँ हरि निवास करते हैं वह वृन्दावन भी धन्य है। वहाँ युगलकिशोर सदा लीला-रत रहते हैं। दयादास सदा उनपर बलिहारी है ॥१२॥

———

३ मोरली रम्य मनोहर वाई

मोरली रम्य मनोहर वाई, मनोहर वाई
मोरली रम्य मनोहर वाई, मनोहर वाई   मोरली० (टेक)

भवत्रय ताप हर्यो रे सान्भलतां,
वान्धव मन हरि चरणे वळगतां
साम्भा ध्यास उदास प्रपंच थी   (१)
कमल नयन कमल वदन परम रसिक–
सप्तस्वर त्रय ग्राम वेद धूनी गाई   मोरली० ॥१॥

विधि सुर गहन गति नव जाणे,
शुक सनकादिक कीरति वखाणे,
तप करे शंकर मारव तुंमर   (२)
सारीमम पधमीनीधपगरीसा ससारीरीरी
गगनरीरीरीरी सगीत चतुराई   मोरली० ॥२॥

मोहरिनो दया करा रंग साम्भो,
आ ससारमां भय सहु भाम्यो,
फरी फरी समय नवी अवतरवुं   (२)
भवण मनन हरि कीरतन भजन–
सेवन श्याम नाम भवनिधि सुखदाई   मोरली० ॥३॥

———

३ रम्य मनोहर मुरली बजी

रम्य मनोहर मुरली बजी मनोहर मुरली बजी। मुरली रम्य मनोहर बजी, मनोहर मुरली बजी।

इस मनोहर आवाजके कानमें पड़ते ही संसारके तापत्रय नष्ट हो गए और चञ्चल मन हरि चरणोंकी ओर झुकते हुए संसारके प्रपञ्चसे उदासीन बनकर ध्यानमें तल्लीन हो गया। सप्तस्वर तीनग्राम युक्त ध्वनिमें स्वयं वन्ने कमलके समान नेत्रवाले कमलके समान मुखवाले परम रसिक भगवान कृष्णका गुणगान किया है ॥१॥

उनकी गहन गतिको ब्रह्मा तथा देवगण भी नहीं जानते। गुरुदेव तथा सनकादिक उनकी कीर्तिका गान करते हैं। उन्हींके लिए शंकर तप करते हैं तथा नारद अपने तम्बूरे पर सारीगम पधमीनी धपगरीसा समा रीरीरी मपनरीरीरी रीरीके रूपमें संगीतकी चतुराईके साथ कीर्तिगान करते हैं ॥२॥

कवि दयाराम कहते हैं कि भगवानका थोड़ासा रंग लगा और संसारके सभी भय दूर हो गए। बार-बार जन्म ग्रहण करनेके लिए अब इस संसारमें पुनः नहीं आना होगा। श्रवण, मनन, कीर्तन भजन सभी रूपमें कृष्णनाम नवनिधियोंके सुखोंको देनेवाला है ॥३॥



४ रासलीला

वागे वृन्दावनमां वांसली रे, ऊभो ऊभो वगाडे कहान,
मारे वेधी मुनिवरपांसली रे, भव रह्यो कोने सान   वागे० ॥१॥

तरुनी शाखाओ झुमी रही छे वरषे नमवाने काज,
वेली वृक्ष सामे झुमी रही रे, भाग्य हमारां आज   वागे० ॥२॥

वनमां मोर नाचे नहीं रे, मृगने मन मोह थाय,
पंखी माळामां महाले नहीं रे, नाद सुणी न रहेवाय   वागे० ॥३॥

वाछरु कान धरीने सांभरे रे, करे नहीं पयपान,
गाय्यो गाला तोडी त्यहां धसे रे, नाद सुणवाने काम   वागे० ॥४॥

फूल्यां कमळ जळ टाढकी रे, दीसे ऊगियो रे भाण।
शंकर समाध मली रह्या रे, थयुं जगत मे जाण   वागे० ॥५॥

काने पडियो ते वसमी नादने रे, वृजनारीओ रे नाद
तार पत पामे निज धामने रे, धाई गयां सौ साथ   वागे० ॥६॥

एके नेपूर काने घालियुं रे वरषे पहरी छे माळ,
एके कंकण माथे घालियुं रे, ऐवी थई छे बेहाल   वागे० ॥७॥

एके कुमकुम काजल रोळियुं रे, टपकुं कीधुं छे गाल
एक वाघुं धार्युं अंबले रे, जोवा दीनदयाल   वागे० ॥८॥

एकना करमां कोसियो रे, पीती वाली एक मोर,
एक छोरु रडतां मेली गई रे, धासी जमनाने तीर   वागे० ॥९॥

एकना स्वामीने मन मामलो रे, आवा दीधी नहीं नार,
कर जोडी कहे छे कामनी रे, "मने आवा दो गिरधार   वागे० ॥१०॥

४. रासलीला

वृन्दावनमें वंशी बज रही है। कान्हा उसे बड़े-बड़े बजा रहा है। उसका नाद मुनिवरोंकी पसलियोंको भेदकर हृदय तक चला गया है। किसीको होश नहीं रहा ह ॥१॥

चरणपर नमन करनके लिए वृक्षकी शाखाएँ डोल रही हैं। वृक्षके साथ लताएँ झूम रही हैं और साथ ही हमारा भाग्य ॥२॥

यमुनाका नीर भी स्थिर हो गया है। पशुओंके मन भी मोहित हो उठे हैं। नाद सुनकर पक्षियोंसे अपने घोसलेमें नहीं रहा जाता ॥३॥

बछड़े कान देकर वंशी-नाद सुन रहे हैं उन्होंने दूध पीना छोड़ दिया है। गायें अपन बन्धन तोड़कर कानसे नाद सुननेको वहाँ दौड़ी जा रही हैं ॥४॥

जलके धरातलपर कमल खिल उठा, मानो उसने सूर्यके दर्शन किए हों। शंकर उस नादकी समाधिमें निमग्न हो उठ किन्तु ससारको इसकी खबर न पड़ी ॥५॥

प्रियतमका वंशी-नाद ब्रजनारियोंके कानोंमें पड़ा। तेरा पद अपने ही घरमें, इसी साकमें पानेके लिए सब ध्वनि सुनकर दौड़ी गई ॥६॥

जल्दीमें एकने कानमें नूपुर पहना तो दूसरीने चरणमें कर्णफूल। एकने कंगनको माथेमें डाला। सब इस प्रकार बेहाल हो गई ॥७॥

एकने कुंकुम काजल और रोलीका तिलक भालपर किया, एक दीनदयालको देखनेकी जल्दीमें भोजनका औषसमें डालकर चल पड़ी ॥८॥

किसीके हाथमें कौर है तो कोई जल पीती-पीती चली जा रही है। कोई बच्चेको रोता हुआ छोड़कर यमुनाके तीरकी ओर भाग चली ॥९॥

एकके पतिका मन ईर्ष्यासे भर उठा और उसने अपनी पत्नीको नहीं जाने दिया। उसकी पत्नी हाथ जोड़कर कहती है कि मुझे कृपा करके जाने दीजिए ॥१०॥

संगमोनी पोती सर्व मामनो रे, पछी बेठो मसळा हाथ
रोस तजीने रीसालवे रे, दीन थई दीनानाथ वागे० ॥११॥

सर्वे पहोंची गई ते मळी रे, तेनो देह पडी घर मांह्य
मोहनलीला संगमां थई मळी रे, साथ मचरण सहु त्यांह्य वागे० ॥१२॥
कुसमो धन मयो मो नारीओ, जाओ पोताने ठाम,
धन्य धन्य तमारो रीतने रे, मेल्यां घरमां ते काम ! वागे० ॥१३॥

आपणा घरमां हे काज न मूकीये रे, माखी करीशुं काम,
वचन ब्रह्माज्ञानि सांभळी रे, गोपी बोल्यां सहु महाल वागे० ॥१४॥
“हावां केम थईए मंदिर फरी रे, अमे तजीशुं तन,”
देखी गोपीजननी प्रीत शुं रे, हरख्या श्री भगवन वागे० ॥१५॥
हावां आवो आपण सहु मळी रे, रमीए रुडेरो रास,
एक एक गोपी वच्चे नाथ ने रे, नीरखे रही पेरे पास वागे० ॥१६॥
मांहो मांहे मरावी आपने रे, कहो, “केम थईए घेर ?’
वचमां कोधा वसी नाथ ने रे, रूप थुए रही पेर वागे० ॥१७॥
बिमासे श्याम ने श्यामनी रे, क्रमनो तूटी ते माळ,
वाधी शारदपूनमनी रातडी रे, कीधी श्री ए, गोपाळ वागे० ॥१८॥
लीला देखी कुन्जधामनी रे, पवन थयो थतिमंथ,
देवता वृष्टि करे प्रसन्न थई रे, देखी प्रभनी उमंग वागे० ॥१९॥
ब्रह्मादिक आवे जोइए थई रे लीला गोकुलचंद,
प्रेम मग्न दिसे गोपार्ष छे रे, तारा वच्चे प्रेम इन्दु वागे० ॥२०॥

ए रासलीला जे गाये ने सांभळे रे, ते पामे निज धाम
पातक सर्वे शमावजो रे, कहे दास दयाराम वागे० ॥२१॥

———

सगवाली सारी स्त्रियाँ वहाँ पहुँच गई हैं।' उसका पति हाथ मलते बैठा ही रहा। ऐसी जो पत्नी थी उसने अपना क्रोध छोड़ दिया। वह दीन भावसे दीनानाथके पास सबसे पहले पहुँची ॥११॥

वह मोहनसे सदाकार होकर मिली। उसका शरीर ही घरमें पड़ा रहा। यह देखकर सबको अचम्भा हुआ ॥१२॥

कृष्ण समझाते ह कि नारियों! यह तुम्हारा कुलधम नहीं है। तुम अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी इस रीतिको धन्य है कि घरके सारे काम-काज ताकपर रख दिए ॥१३॥

अपने घरके कामोंको दूसरे दिन करनेकी आशा पर नहीं छोड़ना चाहिए। प्रियतमके वचन सुनते ही सब गोपियाँ प्रेमपूर्वक बोली ॥१४॥

अब हम वापस घर कैसे जाएँ? हम अपना शरीर यहीं छोड़ेंगी।' गोपियोंकी ऐसी प्रीति देखकर श्री भगवान हर्षित हुए ॥१५॥

वे बोले कि आओ, हम सब मिलकर सुन्दर रास रचाएँ। हर एक गोपी अपने पास प्रियतमको अच्छी तरह निरख रही है ॥१६॥

वे गर्वीली होकर कहती हैं कि कहो घर कैसे जाएँ? वे बीचमें कृष्णको लेकर उनका सुन्दर स्वरूप दख रही ह ॥१७॥

श्याम और राधा मतवाले बन गए ह और उनकी छातीकी मालाएँ टूट गई ह। श्री गोपालने शरद पूनमकी रातको लम्बी बना दिया ॥१८॥

कुञ्जधामकी इस लीलाको देखकर पवनकी गति रुक गई। व्रजकी उमंगको देखकर देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे ॥१९॥

ब्रह्मा इत्यादिने आकर गोकुलचन्द्रकी लीला देखी। कृष्ण वैसे ही दिखाई देते हैं जैसे बादलकी ओटमें तारोंके बीच चन्द्रमा दिखाई देता है ॥२०॥

जो यह रास-लीला गाता और सुनता है वह वैकुण्ठ-धाम पाता है। दयाराम कहते हैं कि इससे उसके सारे पातक मिट जाते ह ॥२१॥

---

५ आरस्नां कामण

कामण दीसे छे मनडेमां ! तारी आंखमां रे !
मोसुं माख मा रे, कामण दीसे छे मनडेमां ! ।।टेक।।

मन्द हसीने चितडुं चोर्युं कुटिल कटाक्षे कामण कीधुं,
अणपडियाळी आंखे सीर्युं झांखमा रे, मोसुं माख । कामण०।।१।।

नखशिखरूप घणुं रसियाळु, लटकुं सघळुं कामणगारु,
छानां कम्मण राखे पलक पांखमां रे, मोसुं माख । कामण०।।२।।

व्हालभरी रसभरणी वाणी, सांभळीने मन ले छे ताणी,
भ्रकुटीमां मटकावी मूरकी नाख मा रे, मोसुं माख । कामण०।।३।।

दयाप्रीतम निरखे ने थाय ते मैं मुखडे मन कहेवाये,
आ विनती मातुरता आवडुं साच मा रे, मोसुं माख । कामण०।।४।।

---

५ आँखका जादू

ओरे अलबेले ! तेरी आँखमें जादू भरा हुआ है। कुछ बोल मत तेरी आँखमें जादू दिखाई देता है।

तुमने मन्द मन्द मुस्कराहटसे चित्त चुरा लिया है और कुटिल कटाक्षसे कलेजेको भेद लिया है। तुम अध-खुली आँखसे मेरी ओर मत देखो ॥१॥

तुम्हारा नखसे शिख तकका रूप अत्यन्त सुन्दर है। तुम्हारी सारी अदाएँ जादूसे भरी हुई हैं। तुम अपने पंकज पाँवमें पद्मनोंको छिपाये हो ॥२॥

तुम्हारी रसीली वाणी प्यारसे भरी हुई है वह दर्शनियोंका मन चुरा लेती है। अरे भौंहोंको मटकाकर भुरकी मत डाल ॥३॥

दयाराम कहते हैं कि प्रियतमको देखनेसे जो आनन्द होता है उसका वर्णन मुखसे नहीं किया जा सकता। विनय इतना ही है कि तुम आतुरता पूर्वक आँखोंमें समा जाओ ॥४॥

———

६ मोहनजीनी मोहनी

कीये ठामे मोहनी न जाणी रे, मोहनजीमां । ॥ टेक ॥

मुगटोनी मटकमां के, भालमांनी लटकमां,
के शुं मोहनी भरेली वाणी रे । मोहनजी० ॥१॥

बीटलीमाला केशमां के मदनमोहन वेशमां,
के मोरली मोहननी पीछाणी रे । मोहनजी० ॥२॥

शुं मुखारविंदमां के, मन्द हास्य फन्द मां,
के कटाक्षे मोहनी वखाणी रे । मोहनजी० ॥३॥

के शुं अंगेअंगमां के, ललित त्रिभंगमां,
के शुं अंगपेली करी स्थापी रे । मोहनजी० ॥४॥

चपल रसिक नेनमां के छानी छानी सेनमां,
के जोबननुं रूप करे पाणी रे । मोहनजी० ॥५॥

दयामा प्रीतम पोते मोहनी स्वरूप छे,
तन मन धन हुं लूटाणी रे । मोहनजी० ॥६॥

६ मोहनजीकी मोहिनी

मोहनजीमें मोहिनी किस स्थानपर है यह मैं नहीं जान पाई।

यह मोहिनी भृकटीके मटकानेमें है या देखनकी अदामें? या नकी मीठी मीठी बातोंमें है? ॥१॥

यह मोहिनी घुघराले बालोंमें है या मदन मोहन वेशमें है? या मोहनकी मुरलीमें फिर उसे पहिचाना जा सकता है? ॥२॥

यह मोहिनी उनके मुखारविन्दमें है या मन्द मन्द हास्यके फन्देमें है? या फिर वह मोहिनी कटाक्षमें भरी हुई है? ॥३॥

क्या यह अंग-अंगमें है या ललित त्रिभगमें है? उसने सयानीको पागल कैसे बना दिया है ॥४॥

क्या वह मोहिनी चपल रसिक नयनोंमें है या गुपचुप किए जानेवाले इशारोंमें है? या यौवनके इस रूपमें है जो पानी-पानी बना देता है! ॥५॥

वास्तवमें दयारामके प्रीतम स्वयं मोहिनी-स्वरूप हैं। इसलिए मैं तन मन धनसे उनपर अपने आपको लुटा चुकी हूँ ॥६॥

घेली मुने कीधी !

घेली मुने कीधी श्रीमदजीना मद ! घेली मुने कीधी ! ॥टेक॥

सखी रे, हुं तो जमनाजी गई हती पाणी,
त्यां में नन्दकुंवरने दीठो म सोभाणी,
मे पण मारा अन्तरनी वात गयो जाणी घेली० ॥१॥

व्हालाजी हुंये बांकी नजर वडे जोयुं,
साहेली, मारा त्यारे तो अधिक मन मोह्युं,
काळजु मारुं कुटिल कटाक्षे प्रोयुं घेली० ॥२॥

व्हाल वशीकरण भरी मीठी वाणी,
सुणी हुं तो भूल बिना रे वेचाणी,
जाणे मन प्रीत-पीडा वायना वसाणी ! घेली० ॥३॥

सखी रे एनी अलबेली आंख अभिमानी,
रूपरसरंगनी भरेली रसनाली,
भूरकी भी भरी बांकी भ्रकुटी में भाली घेली० ॥४॥

सखी ! जेनु मुखडुं मदनमोहनकारी,
अंगो अंग माधुरी मनोहर भारी,
मन्द मन्द मधुरे हसी मुने मारी ! घेली० ॥५॥

नटवर ए नवरसीलो कामणे भर्यो छे,
मावडो रुपालो एने कोणे कर्यो छे ?
में तो मारा मन थकी एने वर्यो छे ! घेली० ॥६॥

७ मुझे बावली बनाया

श्रीनन्दजीके नन्दनने मुझे बावली बना दिया ! अरे, मुझे बावली बना दिया !!

सखि री ! मैं तो जमुनाजी पानी भरने गई थी । वहाँ मैंने नन्दकुँवरको देखा और मोहित हो गई । उन्होंने भी मेरे हृदयकी बात जान ली ॥१॥

प्रियतमन प्रमभरी बाँकी चितवनसे मेरी ओर देखा । ओरी सखी तब तो मेरा मन और भी अधिक मोहित हो गया । अपने कुटिल कटाक्षोंसे उन्होंने मेरा कलेजा छेद दिया है ॥२॥

प्यारभरी, मीठी वशीकरणयुक्त वाणी सुनते ही मैं बिना मूल्य बिक गई । प्रीतिकी वेदनाको मन ही जानता है । वह कही नहीं जा सकती ॥३॥

अरी सखी ! उनकी आँखें लम्बली, नुकीली हैं, रूप रस रँगसे भरी है, रतनारी हैं । मैंने उनकी जादू भरी तिरछी भौंहोंको देखा है ॥४॥

सखी ! उनका मुँह मन्मथका मोहित करनेवाला है । उनके अंग प्रत्यंगमें अत्यधिक माधुरी भरी हुई है । उन्होंने अपनी मन्द मन्द मधुर हँसीसे मुझे मार डाला ॥५॥

नटवरके नयन शिखा तक जादू भरा है । अरे इतना रूपवान इसे किसने बनाया ? मैंने तो अपने मनसे इसे वर लिया है ॥६॥

सखी ! एणी मोरलीमां मोहनी भरी छे,
          तेणे मुने घणी प्रेहविकल करी छे,
सखी ! मारी सुधबुध एणे हरी छे ! प्रेली० ॥७॥

कामबाणु अब मधो कोईने कहेवातु,
          लागी लाह्य रोमेरोम, मधो में रहेवातु !
कर कयो उपाय हवे मधी में रहेवातु ! प्रेली० ॥८॥

तालावेली लागी, तरफडुं छुं, में मराशे,
          केम करी मेलाप्ये मोहन सुख थाशे,
लाभने लगाड परी ! जीव मारो जाशे ! प्रेली० ॥९॥

विरह वहि्नमां बले छे समली गई साहेली,
          खानपान मान कर्तु नथी, लाज मेली
रखे एनो थाय मवरपा प्रेली ! .. प्रेली० ॥१०॥

एवे समे दयाला प्रीतमजी पधार्या,
          मंक भरी कुञ्जसदनमां सधार्या,
आप्यो आनन्द, प्रेहताप सौ निवार्या ! प्रेली० ॥११॥

———

हे सखी! उसकी मुरलीमें मोहिनी भरी है। उसने मुझे विरहसे विकल कर दिया है। सखी! मेरी सुधबुध उसने हर ली है ॥७॥

कलेजेका दर्द किसीसे कहा नहीं जाता। हे राम! रोम रोममें आग लगी है मुझसे रहा नहीं जाता। कोई उपाय करो अब मुझसे रहा नहीं जाता ॥८॥

मैं तड़प रही हूँ। अरे मैं मर जाऊँगी। किसी भी प्रकार मोहनसे मिला तभी मुझे सुख मिलेगा। लज्जाको छोड़ नहीं तो मेरे प्राण चले जाएँगे ॥९॥

सखी समझ गई कि यह विरहमें जल रही है। इसे खानपानका कुछ ख्याल नहीं, इसने लज्जा भी दूर बहा दी है। शायद यह इसकी अन्तिम दशा है ॥१०॥

इसी समय दयारामके प्रियतम आ गए और उस गोपीको गोदमें उठाकर कुञ्जसदनमें चले गए। उसे आनन्द देकर कृष्णने उसके सारे विरहतापको दूर कर दिया ॥११॥



९. मारु



आठ कुवाने नव वावडी रे लोल, सोलसें पनिहारीनी हार
मारा वालाजी हो, हावां नहि जाउं मही वेचवा रे लोल। टेक
सोना ते केर्य मार्थ बेडलुं रे लोल उढेणी रत्न जडाव   मारा० ॥१॥

केड मरडीने घडो मे भर्यो रे लोल
तुट्यो मारो नवसर हार   मारा० ॥२॥

कोठ ते ऊभो कहानजी रे लोल,
भाई मने घडुलो चढाव   मारा० ॥३॥

हुं तुने घडुलो चढावुं रे लोल,
पाय मारा घर केरी नार   मारा० ॥४॥

तुज सरखा गोवालिया रे लोल,
ते तो मारा बापना गुलाम   मारा० ॥५॥

तुज सरखी गोवालणी रे लोल,
ते तो मारा पगनी पेजार   मारा० ॥६॥

दयाना प्रीतम प्रभु पातळा रे लोल,
ते तो मारा प्राणना आधार   मारा० ॥७॥

———

९. मेरा

आठ कुएँ और नौ बावड़ियाँ हैं, और है सोलह सौ पनिहारिनोंकी कतार। मेरे प्रियतम मैं वहीं लेकर अब नहीं आऊँगी।

मेरा घड़ा सोनेका है और गेंडुरी (घड़ेके नीचे रखी जानेवाली कपड़की गोल घेरा) रत्नजटित है ॥१॥

मैंने कमर मोड़कर घड़ा भरा है जिसमें मेरा नौलड़ियोंवाला हार टूट गया है ॥२॥

तटपर कान्हा खड़ा था। उसे देख मैंने कहा कि भाई जरा घड़ेको सिरपर उठा दो ॥३॥

उसने कहा–तू मेरी घरकी नार (पत्नी) बन जा, तो मैं तेरा घड़ा चढ़ाऊँ ॥४॥

मैंने कहा—तेरे जैसे ग्वाले तो मेरे पिताके गुलाम हैं ॥५॥

उसने कहा—तेरी जैसी ग्वालिन मेरे पैरकी जूती है ॥६॥

दयारामके प्रभु छरहरे मदनके हैं और वे ही मेरे प्राणाधार हैं ॥७॥

---

९. मारुं



माठ कुवाने मब वावडी रे लोल, लोलसें पनिहारीनी हार,
मारा वालाजी हो, हावां महिं आउं मही वेचवा रे लोल । टेक
सोना ते केरं मारं बेडलु रे लोल उढेणी रत्न जडाव   मारा० ॥१॥

केड मरडीने घडो मे मर्यो रे लोल
तुटयो मारो नवसर हार   मारा० ॥२॥

कांठ ते उभो कहानजी रे लोल,
भाई मने घडुलो चडाव   मारा० ॥३॥

हुं तुने घडुलो चडावुं रे लोल,
थाय मारा घर केरी नार   मारा० ॥४॥

तुज सरखा गोवालिया रे लोल,
ते तो मारा बापना गुलाम   मारा० ॥५॥

तुज सरखी गोवालणी रे लोल,
ते तो मारा पगनी पेजार   मारा० ॥६॥

दयाना प्रीतम प्रभु मलसा रे लोल,
ते तो मारा प्राणना आधार   मारा० ॥७॥

———

९. मेरा



आठ कुएँ और नौ वावड़ियाँ हैं और है सोलह सौ पनिहारियोंकी कतार। मेरे प्रियतम मैं वहाँ देखने अब नहीं जाऊँगी।

मेरा घड़ा सोनेका है और गेंडुरी (घड़ेके नीचे रखी जानेवाली कपड़की गोल घेरा) रत्नजटित है ॥१॥

मैंने कमर मोड़कर घड़ा भरा है जिसमें मेरा मोतड़ियोंवाला हार टूट गया है ॥२॥

तटपर कान्हा खड़ा था। उसे देख मैंने कहा कि भाई जरा घड़ेको सिरपर उठा दो ॥३॥

उसने कहा—तू मेरी घरकी नार (पत्नी) बन जा, तो मैं तेरा घड़ा चढ़ाऊँ ॥४॥

मने कहा—तेरे जैसे ग्वाले तो मेरे पिताके गुलाम हैं ॥५॥

उसने कहा—तेरी जैसी ग्वालिन मेरे पैरकी जूती है ॥६॥

दयारामके प्रभु छरहरे बदनके हैं और वे ही मेरे प्राणाधार हैं ॥७॥

१० हुं शुं जाणुं

हुं शु जाणुं जे व्हाले मुजमां शुं दीठुं,
वारे वारे सामु भाळे, मुज लागे मीठुं. हुं शु० ॥टेक॥

हु जाउं जळ भरवा त्यां पुंठे पुंठे आवे,
गगर ढोळाव्यो व्हालो बेडलुं चडावे हु शु० ॥१॥

वढुंने तरछोडु तोए रीस न लावे,
कांई कांई मीसे मारे घेर आवीने बोलावे हु,शुं० ॥२॥

दूरथी देखीने मने दोडयो आवे दोटे,
पोतानी माळा ल्हाडो पहेरावे मारी कोटे. हुं शुं० ॥३॥

एकलडी देखे त्यां मुने पालवे रे लागे,
रंक थईने कांई कांई मारी पासे मागे हुं शुं० ॥४॥

(मुने) ज्यां ज्यां जाती जाणे, त्यां त्यां ए आडो आवी ढूके,
दयानो प्रीतम मारी केड न मूके. हुं शुं ० ॥५॥

———

१० मैं क्या जानूँ

मुझे क्या पता कि प्रियतमने मुझमें क्या देखा है ? वह बार बार मेरी ओर देखता है। मेरा मुख उसे मधुर लगता है।

मैं जब पानी भरने जाती हूँ तो वह मेरे पीछे-पीछे आता है। वह प्रियतम बिना कहे मेरा घड़ा चढ़ा देता है ॥१॥

मैं उसे झिड़कारती हूँ फटकारती हूँ, फिर भी उसे बुरा नहीं लगता। किसी न किसी बहाने वह मेरे घर आकर मुझे बुलाता है ॥२॥

मुझे दूरसे देखकर वह दौड़ता हुआ पास चला आता है और कभी-कभी अपनी माला निकालकर मेरे गलेमें पहना देता है ॥३॥

मुझे अकेली देखकर वह मेरे पैरों पड़ता है और रच मचकर मुझसे कुछ-कुछ माँगता रहता है ॥४॥

मुझे जहाँ-जहाँ जाती हुई देखता है वहाँ-वहाँ आड़े आकर वह झाँकता है। सखि दयारामका यह प्रियतम किसी तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ता ॥५॥



११ व्रज वहालुं रे

व्रज वहालुं रे वैकुंठ नहीं आवुं,
मुने ना गमे रे चतुर्भुज थावुं,
त्यां श्री नन्दकुंवर क्यांथी लावुं — व्रज वहालुं रे ॥१॥
जोईए ललित त्रिभंगी मारे गिरिधारी,
संगे जोईए श्री राधा प्यारी,
ते विना नव ठरे आंख मारी — व्रज वहालुं रे ॥२॥
त्यां श्री यमुना गिरिवर छेनी,
मुने आसक्ति छे ए बेनी,
ते विना मारो प्राण प्रसन्न रे नो — व्रज वहालुं रे ॥३॥
त्यां श्री वृन्दावन रास नथी,
व्रज वनिता संग विलास नथी,
विष्णु वेणु नाद अभ्यास नथी — व्रज वहालुं रे ॥४॥
ज्यां वृक्ष वृक्ष वेणुधारी,
पत्रे पत्रे हरि मुख चारी,
एक व्रज रज चो मुक्तिवारी — व्रज वहालुं रे ॥५॥
ज्यां वसवाने शिव सखी रूप थया,
हजु अज व्रज रज मे तरसता रया,
उद्धव सरखा तृण कृष्ण थया — व्रज वहालुं रे ॥६॥
सुख स्वर्ग तुं कृष्ण बिना कलवुं,
मुने नां गमे ब्रह्म सदन भलवुं,
धिक सुख जेने पामी पडवुं — व्रज वहालुं रे ॥७॥
शुं करु लईने हु सायुज्य पामी,
एकतामां तमो नां रहो स्वामी
मारे दासपणामां शी खामी — व्रज वहालुं रे ॥८॥
व्रज जन वैकुण्ठ सुख जोई हस्यां,
ना गम्युं ब्रह्मसदनमांहे वस्यां,
घेर स्वरूपानन्द सुख मति भ्रे गस्यां — व्रज वहालुं रे ॥९॥
गुरुजन गोकुलवासी थाशुं
श्री वल्लभशरणे नित्य जाशुं,
दया प्रीतम सेवी रस जश गाशुं — व्रज वहालुं रे ॥१०॥

११ व्रज प्यारा रे

मुझे व्रजही अत्यन्त प्रिय है, मैं वैकुण्ठ नहीं आऊँगा । चतुर्भुज होना भी मुझे पसन्द नहीं है । भला उस वैकुण्ठमें मैं नन्दकुँवरको कहाँसे लाऊँगा ? ॥१॥

मुझे तो ललित त्रिभंगी गिरिधारी चाहिए और साथमें उनकी प्यारी राधा चाहिए । उनके बिना मेरी आँखें तृप्त नहीं हो सकतीं ॥२॥

उस व्रजमें श्री यमुना तथा गिरिवर गोवर्धन है । इन दोनोंमें ही मुझे बड़ी आसक्ति है । इनके बिना मेरे प्राण प्रसन्न नहीं रह सकते ॥३॥

उस वैकुण्ठ लोकमें वृन्दावनकी रासक्रीडा नहीं है व्रजकी वनिताओंके साथ कृष्णका विलास नहीं है । उस वैकुण्ठवासी विष्णुको वेणुवादनका अभ्यास भी तो नहीं है ॥४॥

जिस व्रजका प्रत्येक वृक्ष वेणुधारी श्रीकृष्ण है प्रत्येक पत्तमें हरिका चतुर्भुज रूप है उस व्रजके एक एक रजकणपर वैकुण्ठकी मुक्ति न्योछावर है ॥५॥

व्रजमें बसनेके लिए शिवने गोपी रूप धारण किया । ब्रह्मा आज भी उसकी रजके लिए तरस रहे हैं । वहाँके तृण भी उद्धवके समान कृष्णमय हैं ॥६॥

कृष्णके बिना स्वर्गका सुख भी कड़वा है । उनके बिना वैकुण्ठके ब्रह्म-सदनका स्पर्श भी मुझे पसन्द नहीं है । जिस सुखको पाकर भी पतन हो उसको धिक्कार है ॥७॥

हे श्री जी ! सायुज्य (मुक्ति) को पाकर भी मैं क्या करूँगा ? हे स्वामी ! उस एकतामें तो आप नहीं रहेंगे । तब फिर इस दास भावमें क्या कमी है भगवन् ? ॥८॥

व्रजके लोग वैकुण्ठका सुख देखकर लौट आए मिला हुआ ब्रह्म लोक उन्हें अच्छा नहीं लगा । घर पर रहते हुए कृष्ण स्वरूप-दर्शनका आनन्दका सुख उन्हें अतिशय अच्छा लगा ॥९॥

गुरुकी कृपाके बलसे गोकुलनिवासी बनूँगा श्री वल्लभाचार्यजी के शरणमें निरन्तर रहूँगा । कवि दयाराम कहते हैं कि प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवाकर रसपूर्वक उनकी कीर्तिका गान करूँगा ॥१०॥

१२ श्याम रंग समीपे न जावुं

● ● ●

श्याम रंग समीपे न जावुं, मारे आज थकी,
श्याम रंग समीपे न जावुं (टेक)

जेमां कालाश ते सहु एक सरखुं सरवमां कपट हशे मावुं,
मारे ॥१॥

कस्तुरीनी बिन्दी करुं नहीं, काजळ ना आंखमां अंजावुं
मारे ॥२॥

कोकिलानो शब्द सुणुं नहीं, कागवाणी शकुनमां न जावुं
मारे ॥३॥

नीलाम्बर काली कञ्चुकी न पहेरुं जमनाना नीरमां न न्हावुं
मारे ॥४॥

मरकत मणि ने मेघ दृष्टे न जोवा, जांबु वंत्याक ना खावुं
मारे ॥५॥

दयाना प्रीतम साथे मुखे नीम लीधो, पण मन कहे (जे) पलक—
ना निभावुं मारे ॥६॥

———

१२ श्याम रंगके पास नहीं जाऊँ

मैं कृष्ण वर्णके पास नहीं जाऊँगी, आजस मैं कृष्ण वर्णके पास नहीं जाऊँगी।

जिनमें कालापन है वे सभी एक समान होते है उन सभीमें ऐसा ही कपट भरा रहता है ॥१॥

काली कस्तूरीकी बिंदी नहीं लगाऊँगी, काले काजलको आँखोंमें नहीं आँजूँगी ॥२॥

काली कोयलका शब्द नहीं सुनूँगी काले कौवेकी वाणीको शकुन-रूपमें नहीं मानूँगी ॥३॥

नीली साड़ी तथा काली कञ्चुकी नहीं धारण करूँगी। यमुनाके काले जलमें स्नान भी नहीं करूँगी ॥४॥

मरकत मणि तथा मधुकी ओर दृष्टि नहीं जाने दूँगी। श्यामवर्णके जामुन तथा बैंगन भी नहीं खाऊँगी ॥५॥

दयाके प्रियतमके बारेमें मुझसे तो मन यह नियम ले लिया है परन्तु मन कहता है कि मैं तो कृष्णके बिना एक पल भी नहीं निभा सकता ॥६॥

१३ वेरण वांसलडी

ओ वांसलडी! वेरण थई लागी रे, व्रजनी नार ने
शुं शोर करे? वासलडी तारो तुं मन विचारने
तुं जंगल काष्ठतणो कटको रंगरसिये कीधो रंगचटको,
मस्तो, त पर आवडो शो लटको? ओ वांसलडी! ॥१॥
तने कहानवर करमां राखे, तुं अधरतणा रस नित्य चाखे,
तु तो अमने दुखडां बहु दाखे ओ वांसलडी! ॥२॥
तुं मोहनना मुखपर म्हाले सुख विना आपने मन साले,
तुं तो शोक्य थई अमने सासे ओ वांसलडी! ॥३॥
हुं तुजने आवी नव जाणती, नहि तो तुज पर म्हेर न आणती,
तारां डाल साहीने मूल ताणती, ओ वांसलडी! ॥४॥
दया प्रीतमने पूरण प्यारी, तुंने अलगी न मूके मुरारी,
तारा अवगुण दीसे भारी ओ वांसलडी! ॥५॥

१३ बैरिन बाँसुरी

री बाँसुरी ! तू ब्रज-नारियोंकी दुश्मन बन बैठी है। क्या शोर मचाती है ? किस जातिकी तू है जरा मनमें विचार तो कर। तू जंगलके काठका टुकड़ा, रंगरसिएने तेरा रंग चटक बना दिया। बस इसपर तेरा इतना नखरा ? ॥१॥

तुझे कन्हैया हाथमें लिये रहता है तू नित्य उनका अधरामृत चखती है। तू हमको बहुत दुःख देती है, री बाँसरी !॥२॥

तू मोहनके मुखपर मौज उड़ाती है। तेरे बिना नाथका काम नहीं चलता। री बाँसरी तू सौत बनकर हमको सताती है ॥३॥

मैं तुझे ऐसी नहीं जानती थी वर्ना तुझपर दया नहीं करती। मैं तेरे मूलोंको शाखाओं सहित उखाड़ फेंकती ॥४॥

दयारामके प्रियतमकी तू बहुत प्यारी है। प्रभु तुझ जरा भी दूर नहीं रखते। री बाँसुरी ! तेरे अवगुण भी भारी दिखाई देते हैं ॥५॥

---

१४ बांसलडीनो उत्तर

ओ व्रजनारी ! शा माटे तुं अमने आल चडावे ?
पुष्प पूरवतणां, तेथी पातळियो अमने लाड लडावे
में पूरण तप साध्यां वनमां, में टाढतडका वेठ्यां तनमां,
त्यारे मोहने महेर आणी मनमां, ओ व्रजनारी ! ॥१॥
हुं चोमासे बाहर रहेती, घणी मेघझडी शरीर सहेती,
सुख दुःख कांई दिलमां नव लहेती, ओ व्रजनारी ! ॥२॥
मारे अंगे बाढ बढाविया, वळी ते संघारे चढाविया,
ते उपर छेद पडाविया, ओ व्रजनारी ! ॥३॥
त्यारे हरिए हाथ करी लीधी सौ कोमां शिरामणि कीधी,
देह अर्पी अर्ध अंग दीधी ओ व्रजनारी ! ॥४॥
माटे दयाप्रीतमने छुं प्यारी, नित्य मुखथी वगाडे मुरारि,
मारा अवगुण दीसे भारी ! ओ व्रजनारी ! ॥५॥

१४ बाँसुरीका उ

भो व्रजनारी ! तू मुझे दोष क्यों देती है ? यह तो पूर्व जन
पुण्य है कि पातलिया (छरहरा) प्रियतम मुझसे लाड़ लड़ाता है ।
मने मनमें पूर्ण तपश्चर्या की है । शरीरसे सरदी-धूप
है । तभी तो, ए व्रजनारी मोहनने मुझपर कृपा की है ॥१॥
मैं चार महीनेतक खुलेमें रहकर शरीरपर मूसलधार मे
झेलती रही हूँ । हे व्रजनारी ! मैं मनमें सुख-दुःखकी कोई पर
नहीं करती थी ॥२॥
मैंने अंगोंपर घाव लगवाए हैं उसे, खराद पर चढ़वाय
और उसके बाद उसमें छेद छिदवाए हैं ॥३॥
तब तो हरिने मुझ (मुरलीको) हाथमें उठाया है
सबमें शिरोमणि बनाया है । मैंने पूरी देह सौंप दी तब मुझ
मिला है ॥४॥
इसलिए म दयारामके प्रीतमको अधिक प्यारी हूँ । मुरारी
अपने मुखसे मुझे बजाते हैं । व्रजनारी ! इसीलिए मरे अ
भी भारी है ॥५॥



१५ मारुं मन मोह्युं

म्हारुं मन मोह्युं वांसलडीने शब्द कामण काला, (टेक)
हुं तो घेली थई, म्हारा घरमां नथी ममतु म्हारा म्हामा

बे अधर उपर वागे छे सुणी अन्तर म्हारुं वाले छे,
एहनो शब्द गगनमां गाजे छे म्हारुं मन मोह्युं ॥१॥

ए वनमां ज्यारे वागे छे, मुने बाण सरीखी लागे छे,
मुने विरहनी वेदना जागे छे म्हारुं मन मोह्युं ॥२॥

हुं तो वोहोळां वोणी भूली छु, वळी जमतां मधुरो भूली छु,
म्हारुं मुख जोई जोई हुं फुली छु म्हारुं मन मोह्युं ॥३॥

पूर्वे तपनी साधना कीधी छे, कृष्णे कृपासाध्य करी दीधी छे
माटे दयाप्रीतमे कर लीधी छे म्हारुं मन मोह्युं ॥४॥

१५. मेरा मन मोह लिया

काले कन्हैयाने बंसी-नादसे मेरा मन मोह लिया है। मैं तो पगली हो गई हूँ। हे प्रिय मुझे मेरे घरमें अच्छा नहीं लगता।

वह दोनों अधरोंपर बज रही है। उसे सुनकर मेरा हृदय तड़प उठता है। अरे, उसका शब्द गगनमें गूँज रहा है ॥१॥

जब वह वनमें बजती है तो मुझे बाणकी तरह भेद देती है ॥२॥

बंसीकी आवाज सुनकर मैं दूध दुहते-दुहते दुहना भूल गई हूँ और भोजन करते-करते उठ खड़ी हुई हूँ। प्रियतम, तेरा मुख देख-देखकर मैं प्रसन्नतासे फूल उठी हूँ ॥३॥

उस बंसीने तप-साधना की है इसलिए कृष्णने उसे कृपा-पात्र बना लिया है और इसीलिए दयारामके प्रियतमने उसे अपने हाथमें पकड़ा है ॥४॥

१६ नमेरो नंदनो छोरो

उद्धव नन्दनो छोरो ते नमेरो थयो जो,
मुने एकली मुकीने मथुरां गयो जो उद्धव० ॥१॥

एने मूकी मारां बधां मन उपनी जो,
मुने शान्ति पडी छे एमां स्वप्नो जो उद्धव० ॥२॥

कोईए कामण कर्युं के फटकार्यो फरे जो,
केम बोल एनु मुज उपर ना ठरे जो उद्धव० ॥३॥

उद्धव सन्देशो कहीने वेहेला आवजो जो
साथे व्याला प्रीतमने तेडी लावजो जो उद्धव० ॥४॥

१६ निर्मोही नन्दका छोरा

उद्धवजी वह नन्दका छोरा निर्मोही हो गया है। देखो तो वह मुझे अकेली छोड़कर मथुरा चला गया है ॥१॥

मुझे छोड़कर जाते समय उसके मनमें दया तक नहीं आई। इधर मैं उसके रूपमें दीवानी हो गई हूँ ॥२॥

क्या किसीने उसपर कोई जादू-टोना कर दिया है या किसीने फट मार दिया है जिससे कि वह दूर-दूर फिरता है? उसका दिल मुझपर क्यों नहीं ठहरता ॥३॥

देखो उद्धवजी, मेरा सन्देशा पहुँचाकर जल्दी आ जाना और वापस दयारामके प्रीतमको भी बुलाकर ले आना ॥४॥

---

१० सखी, हुं तो जाणती जे

सखी, हुं तो जाणती जे सुख हशे स्नेह मां । (टेक)

हुं शुं जाणुं जे प्राण परवश पडशे अग्नि उठशे आखी देहमां,
पीडा पामेरे, परो थशे न मावे, जाणुं जे एवो छे कोई एहमां ।
सखी. ॥१॥

रूप ने गुण सहु ते तेमां देखे, जेनुं मन मान्युं जेहमां
स्वाधीनने पराधीन करी नाखे, नेह विना एह बल केहमां ।
सखी ॥२॥

हुं दुःखी मुही (थही) ने वहालो विकल त्यां, सुखी मां मले कोई देहमां,
दयाना प्रीतम सदा समीप वसे तो भीजी रहुं आनंदना मेहमां ।
सखी. ॥३॥

१७ सखी मैं तो जानती थी

सखि ! मैं तो मानती थी कि स्नेहमें सुख होगा।

मुझे क्या पता कि उसके कारण प्राण परवश हो जाएँगे और सारी देहमें ज्वालाएँ उठने लगेंगी। पीड़ा हो रही है, फिर उससे दूर हटना अच्छा नहीं लगता, इस प्रेममें कुछ ऐसा जादू है ॥१॥

जिसका मन जिससे लग गया वह उसीमें रूप-गुण सब कुछ देखता है। प्रेम स्वाधीनको पराधीन कर डालता है। सिवा स्नेहके भला यह सामर्थ्य किसमें है ? ॥२॥

यहाँ मैं दुःखी हूँ और प्रियतम वहाँ विकल हैं। हम दोनोंमेंसे कोई सुखी नहीं है। दयारामके प्रियतम यदि हमेशा समीप रहें तो मैं आनन्दकी वर्षामें सदा भींगा करूँगी ॥३॥

१८ व्हाले तो विसारी अमने मेहल्यां

ओ उद्धवजी, व्हाले तो विसारी अमने मेहल्यां
अमो शुं कहाय ? रास रमाडी, तेडोने तरछोडयां (टेक)

पहेला व्हेली प्रीत अमशुं कीधी, मुरलीमां एणे वश करी लीधी
गोपी सौने विह्वल करी दीधी, ओ उद्धवजी ॥१॥

प्रीतलडी तो करतां पहेली, प्रभु वेलीमे थई छुं घेली,
पण मलो मोहन अमने मन मेली, ओ उद्धवजी ॥२॥

एणे हैडांमां तो हरि लीधां, कानुडे तो कामण कीधां,
घेर घेर वधी मांखण पीधां ओ उद्धवजी ॥३॥

ए कामुंडो कामण गालो, एनी आंखलडीनो छे चालो,
प्रीतिपरस शुं प्रीत थी निहालो ओ उद्धवजी ॥४॥

मेली कुबजा तो कामणगाली, तेनी साथे लागी बहु तालो,
एणे वश कीधा छे वनमाली, ओ उद्धवजी ॥५॥

अमे सांमलीयानी सगे रमतां व्रज वन वनमां पूंठल भमतां,
अमो मेलां वेसीने मोजम जमतां ओ उद्धवजी ॥६॥

मथुरामां जई एणे कंस रोस्यो, एक आंगलीये गोवर्धन तोल्यो
सत्य धर्मी अम्यासित बोल्यो ओ उद्धवजी ॥७॥

दयारामना स्वामीने केहेजो मथुरां मुकी ने गोकुल रहेजो
सौ गोपिकाने दरसन देजो, ओ उद्धवजी ॥८॥

१८ प्रियतम तो हमको भुलाकर चला गया

मा उद्धवजी प्रियतम तो हमको भुलाकर चला गया। पहले तो रासक्रीड़ाएँ कीं और फिर छोड़ दिया, प्यारसे बुलाकर दुत्कार दिया।

पहले उसने हमसे प्रीति की, मुरलीमें हमें वश कर लिया और जितनी गोपियाँ थीं उन्हें विह्वल कर डाला ॥१॥

प्रियतमने पहली प्रीति की सो मैं उस देखकर बावली हो गई। मोहन तब हमसे दिल खोलकर मिला था ॥२॥

अरे कन्हैयाने मेरा हृदय चुरा लिया है और हमपर जादू कर दिया है। ओ उद्धवजी उसने घर घरमें दही-मक्खन खाया है ॥३॥

यह कन्हैया बड़ा जादूगर है। जादू उसकी आँखका खेल है। वह प्रेमीको मार कर प्रसन्न देखता है ॥४॥

और वह कुब्जा भी बड़ी जादूगरनी है। उसके साथ प्रियतमका दिल बहुत रम गया है। उसने वनमालीको वशमें कर लिया है ॥५॥

ओ उद्धवजी हम श्यामके साथ खेल थे। व्रजके वनोंमें उसके पीछे घूमा करते थे। भोजन भी हम साथ-साथ किया करते थे ॥६॥

प्रियतमने मथुरामें कंसको मारा अंगुली पर गोवर्धन उठाया। ऐसा वह सत्यवचनी अन्य बात क्या जाने? ॥७॥

हे उद्धव दयासागर स्वामीसे कहना कि मथुरा छोड़ दें, गोकुलमें आकर रहें तथा सभी गोपिकाओंको दर्शन दें ॥८॥

१९ प्रेमनी पीड़ा

प्रेमनी पीड़ा ते कोने कहिये रे, हो मधुकर, प्रेमनी पीड़ा ते ।
वालो न लागे प्रीत जली प्राण जाये,
कुबजानां कर्यां ते वाल्हां हइए रे हो मधुकर० ॥१॥
जेने कहिये ते तो सरवे कहे मुरख,
पस्तावो पामीने सही रहिये रे हो मधुकर० ॥२॥
धीकीये डाम्यां रातदिवस अंतरमां,
मुख मिठासे मन कहिये रे हो मधुकर० ॥३॥
हुं नहीं दुःखीने व्हालो सुखमांहे मल्हाले,
पण समोवडण कांई न्हाना थईए रे, हो मधुकर० ॥४॥
वाल्या ऊपर सूख दीधुं ए दामोदरे,
पेसी सोनसखी सुणीने कालज दहिये रे हो मधुकर० ॥५॥
अबलाने अवतार ते पराधीन,
एक अस्त्रीये पण क्यां जईए रे, हो मधुकर० ॥६॥
स्नेहनो दासातो थयो मरम्मथकी माठो
शुं करिये बापड़ां तेने कहिये रे, हो मधुकर० ॥७॥
दयाप्रभु आवे तो तो सदा सुख थाये,
मुने दुःख दीधुं ए नमवीने छंये रे, हो मधुकर० ॥८॥

———

१९. प्रेमकी पीड़ा

रे मधुकर! प्रेमकी पीड़ाको किससे कहा जाय?

जब प्रीति हुई तो कुछ मालूम नहीं पड़ा, लेकिन जब वह जाने लगी तो प्राण ही जाने लगे। हाथका किया तो भुगतना ही पड़ेगा ॥१॥

जिनसे कहती हूँ वे सभी मूर्ख ठहराते हैं। भला अब पछताकर सह लेनेके अलावा क्या उपाय है? ॥२॥

रात-दिन अन्दर-ही-अन्दर जलते रहना और भूख तथा नींदको खो बैठना बस यही बाकी बचा है ॥३॥

यहाँ मैं दुःखी हूँ और उधर प्रियतम सुखमें मगन हैं। अतः हम दोनों समान रूपसे सुखकी शीतलताका अनुभव नहीं कर पाते ॥४॥

इतना ही नहीं दामोदरने जलेपर नमक छिड़का है। उस सौत कुबरीकी बात सुनकर कलेजा धधकता है ॥५॥

अबला जन्म ही पराधीन है। हम रंक खूब रोते कलपते हैं, पर कहाँ जा सकते हैं? ॥६॥

स्नेहकी जलन तो मौतसे भी ज्यादा कठिन होती है। क्या करूँ जो किया है उसको भुगतना ही पड़ेगा ॥७॥

अब तो दयाराम प्रभु आ जाएँ तो तुरन्त सुख हो जाए। मुझे इस नन्दजीके छोकरेने बहुत दुःख दिया है ॥८॥

२० प्रेम-परीक्षा

सज्जनथी (मोक्षपथी) छे अळगी रे, वात (एक) ए प्रेमतणी,
कोई अनुभवी जाणे रे, कहेतां ना आवे बणी ॥१॥

प्रसुतानी पीडा रे, वंध्या ते शुं जाणे?
जाण्युं केम आवे रे, माण्याने परमाणे ॥२॥

मूग साकर खाधी रे, मुंगाने स्वपन थयुं,
सरस मन जाणे रे, बीजाने नव जाय कह्युं ॥३॥

घायलना दुःखने रे, कायर ते तो शुं प्रीछे
एम ज्ञानी कहे नहीं रे, रसिकनी गति शी छे ॥४॥

नेम सघळा नासे रे, प्रेम ज्यारे व्यापे,
जेने निद्रा नावी रे, ते उत्तर केम आपे ॥५॥

भाळक मामुकर्मा रे, एम गुण सहु देखे,
वर्तुं नामे छे तेने रे, अवर तेवुं नव पेखे ॥६॥

वर्तुं चित्त ज्यां चोर्युं रे, तेने तेथी सुख थाये,
स्वाद शो छे अग्निनीमां रे, चकोर माने खाये ॥७॥

रीत प्रीतनी एवी रे, तेनुं सुख ते जाणे,
अनुभवथी समाज्या रे, तेना अवगुण माने ॥८॥

स्नेह सुखथी नव थाये रे, वेठी दुःख नव घटे,
जेम वृक्षने वळगी वेली रे, ते तो फरी ना छूटे ॥९॥

शोधे साथके न आवे रे, उद्धव! पद्धत प्रेमतणी,
करवी नथी पडती रे, एनी मेळे आवे बणी ॥१०॥

प्रीत थाये तो सहज रे, छूटे ना पछी छोडी,
मच्छने दुःख दे छे रे, पल्मा पछी मंकोडी ॥११॥

२० प्रेम-परीक्षा

हे उद्धवजी! यह प्रेमकी बात ही निराली है। उसे वाणीसे नहीं कहा जा सकता, कोई अनुभवी ही जान सकता है ॥१॥

प्रसूताकी पीड़ाको बाँझ स्त्री कैसे जान सकती है? दूसरेके कहने मात्रसे उसका अनुभव कैसे किया जा सकता है? ॥२॥

जिस प्रकार गूँगा शक्कर खाए अथवा सपना देखे तो मनमें सब कुछ जानते हुए भी वह दूसरेसे कह नहीं सकता, वैसी ही बात हमारी है ॥३॥

घमासका दुःख कायर भला क्या जाने? इसी प्रकार ज्ञानी (योगी) यह नहीं जान सकता कि रतिकी गति (आनंद) क्या है? ॥४॥

जब प्रेम व्याप्त हो जाता है, तब सारे नियम नष्ट हो जाते हैं। जिसे निद्रा आ रही है वह भला उत्तर किस प्रकार दे सकता है? ॥५॥

आशिक अपने माशूकमें सब रूप और गुण देखता है, किन्तु जैसे उन्हें एक दूसरेके रूप-गुण दिखाई देते हैं, वैसे दूसरा नहीं देख सकता ॥६॥

जिसका चित्त जिसमें रम गया है, उसे उसीसे सुख मिलता है। अग्निमें भला कोई स्वाद है? फिर भी चकोर उसे बड़े प्रेमसे खाता है ॥७॥

प्रीतिकी रीति ही ऐसी होती है। उसका सुख प्रेमी ही जानते हैं। जिसको प्रेमका अनुभव नहीं है, उसे तो उसमें अवगुण ही नजर आते हैं ॥८॥

स्नेह न तो सुखसे बढ़ता है, न दुःखसे घटता है। जिस प्रकार वृक्षमें लिपटी हुई बेलि उससे दूर नहीं होती, उसी तरह प्रेम भी नहीं छूटता ॥९॥

हे उद्धव! प्रेमकी पद्धति सोचने और सुननेसे नहीं आती। इसमें कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह तो अपने आपही आ जाती है॥१०॥

प्रीति होती तो सहज है, लेकिन बादमें वह छुड़ानेपर भी नहीं छूटती। निगल जानेके बाद ही काँटा मछलीको [illegible] ...

२० प्रेम-परीक्षा

उद्धवजी (ओधवजी) छे अलगी रे, वात (एक) ए प्रेमतणी,
कोई अनुभवी जाणे रे, कहेतां ना आवे वाणी ॥१॥

प्रसुताली पीडा रे, वंध्या ते शुं जाणे?
जाण्युं केम आवे रे, माण्याने परमाणे ॥२॥

मूग साकर खाधी रे, गुंगाने स्वपन थयुं,
सरव मन जाणे रे, बोलाने नव जाय कह्युं ॥३॥

घायलना दुःखने रे, कायर ते तो शुं प्रीछे,
एम ज्ञानी कहे महीं रे, रतिनी गति शी छे ॥४॥

नेम सघला भासे रे, प्रेम ज्यारे व्यापे,
तेने भिन्न भावी रे, ते उत्तर केम आपे ॥५॥

आशक माशुकमां रे, रूप गुण सहु देखे,
बहु भासे छे तेने रे, अवर तेवुं नव पेखे ॥६॥

जेनुं चित्त ज्यां चोंटयुं रे, तेने तेथी सुख थाये,
स्वाद शो छे अग्निमां रे, चकोर भावे खाये ॥७॥

रीत प्रीतनी एवी रे, तेनुं सुख ते जाणे,
अनुभवथी अजाण्या रे, तेना अवगुण आणे ॥८॥

स्नेह सुखथी मन वाधे रे, वेली दुःख मन घटे,
जेम वृक्षने वळगी वेली रे, ते तो फरी नां छूटे ॥९॥

वीजे सामले न आवे रे, उद्धव! पद्धत प्रेमतणी,
करवी नथी पडती रे, एनी मेळे आवे बणी ॥१०॥

प्रीत बांधे तो सहज रे, छूटे नां पछी छोडी,
मच्छने दुःख दे छे रे, मस्या पछी अंकोडी ॥११॥

२० प्रेम-परीक्षा

हे उद्धवजी! यह प्रेमकी बात ही निराली है। उसे बातोंसे नहीं कहा जा सकता। कोई अनुभवी ही जान सकता है ॥१॥

प्रसूताकी पीड़ाको बाँझ स्त्री कैसे जान सकती है? दूसरेके कहने मात्रसे उसका अनुभव कैसे किया जा सकता है? ॥२॥

जिस प्रकार गूँगा शक्कर खाए अथवा सपना देखे तो मनमें सब कुछ जानते हुए भी वह दूसरेसे कह नहीं सकता, वैसी ही बात हमारी है ॥३॥

घायलका दुःख कायर मन क्या जाने? इसी प्रकार ज्ञानी (योगी) यह नहीं जान सकता कि गोपियोंकी भक्ति (आनन्द) क्या है? ॥४॥

जब प्रेम व्याप्त हो जाता है तब सारे नियम नष्ट हो जाते हैं। जिसे निद्रा आ रही है वह भला उत्तर किस प्रकार दे सकता है? ॥५॥

आशिक अपने माशूकमें सब रूप और गुण देखता है किन्तु जैसे उन्हें एक दूसरेके रूप-गुण दिखाई देते हैं वैसे दूसरा नहीं देख सकता ॥६॥

जिसका चित्त जिसमें रम गया है उसे उसीसे सुख मिलता है। अग्निमें भला कोई स्वाद है? फिर भी चकोर उसे बड़े प्रेमसे खाता है ॥७॥

प्रीतिकी रीति ही ऐसी होती है। उसका सुख प्रेमी ही जानते हैं। जिसको प्रेमका अनुभव नहीं है उसे तो उसमें अवगुण ही नजर आते हैं ॥८॥

स्नेह न तो सुखसे बढ़ता है न दुःखसे घटता है। जिस प्रकार वृक्षमें लिपटी हुई बेलि उससे दूर नहीं होती उसी तरह प्रेम भी नहीं छूटता ॥९॥

हे उद्धव! प्रेमकी पद्धति सीखने और सुननेसे नहीं आती। इसमें कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह तो अपने आपही आ जाती है ॥१०॥

प्रीति होती तो सहज है, लेकिन बादमें वह छुड़ानेपर भी नहीं छूटती। निगल जानेके बाद ही काँटा मछलीको दुःख देता है ॥११॥

साची प्रीत तो प्राण ले रे, साधारण पाय परी,
दादुर जल विण जीवे रे, माछलडां तो जाय मरी ॥१२॥
मोटी मननी मोहनी रे, प्रीत थी बीजी न मले,
जडपत्र जुओ, लोढुं रे, चमक ने देखी चले ॥१३॥
छीप रहे छे सागरमां रे, इच्छा स्वाति बुंदतणी
जुओ दृष्टि चकोरनी रे, अवस रहे छे इन्दुमणी ॥१४॥
लज्जा सुधबुध सामर्थ्य रे, प्रेमी जनमां न टके
मधुकर वांस कोरे रे, कमल मद भेदी शके ॥१५॥
मृग सहेजे मरे छे रे, पलायन अभ्यासी,
राग अनुराग पाशे रे, बंधायो न शके नासी ॥१६॥
दृष्टि प्रीतनो मार्यो रे, पतंग दीपकमां बले,
जाय प्राण पोतानो रे तोये स्नेहीमे रे मले ॥१७॥
रहे चातक तरस्यो रे, सदा मास बार लगी,
पीए स्वातीमु वारि रे, अवर स्पर्शे न अगी ॥१८॥
बिघना व्यसनीने रे, अमृत पण सुख नां करे,
पय पाणी थी उत्तम रे, मीन तेमां मांहे मरे ॥१९॥
जेनुं मन जे दुं मान्यु रे, तेने सुख तेथी मले,
ते विना तेयी साए रे, नां मावे तेनी आंख तले ॥२०॥
जे बैराटमां लोचन रे, इन्दु भानु मेद कह्यो,
कंज करमाय चन्द्रे रे, फूले रवि नेह वस्यो ॥२१॥
कण्ठे वलगी नां छूटे रे, ए प्रेमतणी फांसी,
काची (काचो) होय तो छूटे रे, गुणी जगनी हांसी ॥२२॥
छे अगम पथ स्नेहनो रे, ओघवजी! नथी बीठो,
त्यां लगी ज्ञान गोठे रे, जोग पथ लागे मीठो ॥२३॥

सच्ची प्रीति प्राण ले लेती है, किन्तु आसानीसे छूटती नहीं। मेंढक बिना पानीके जी सकता है, किन्तु मछलियाँ मर जाती हैं ॥१२॥

मनकी मोहिनी गहन होती है। प्रीतिकी समानता दूसरेसे नहीं की जाती। लोहेकी जड़ता भी चुम्बकको देखकर खिंचन लगती है ॥१३॥

सागरमें रहते हुए भी सीप स्वाति बूँदकी इच्छा करती है। वैसो चकोरको, उसकी दृष्टि चन्द्रमाकी ओर अचल रहती है ॥१४॥

प्रेमी मनमें लज्जा सुख-बुध और सामर्थ्य नहीं टिकता। भौंरा बाँसको छेद देता है, किन्तु कमलको नहीं छेद पाता ॥१५॥

भागनेमें प्रवीण मृग रागके अनुरागमें बँधकर भाग नहीं सकता अपितु अपना प्राण आसानीसे दे देता है ॥१६॥

प्रीतिसे आहत पतंग दीपकमें जल जाता है। अपना प्राण देकर भी वह प्रेमीसे जाकर मिलता है ॥१७॥

चातक बारहों महीने प्यासा रहता है। वह स्वातिका ही पानी पीता है। विचलित होकर वह दूसरे जलका स्पर्श नहीं करता ॥१८॥

विषका व्यसनी अमृतसे भी सुख नहीं पाता। यद्यपि दूध पानीसे उत्तम है, किन्तु मछली दूधमें पड़कर अपना प्राण छोड़ देती है ॥१९॥

जिसका मन जिससे लगता है, उसे उसीसे सुख मिलता है। उसके सिवाय उसे उससे अच्छी वस्तु भी नहीं सुहाती ॥२०॥

इस विराटके चन्द्र-सूर्य दो लोचन हैं। उनमें क्या भेद है? किन्तु कमल चन्द्रमासे मुरझाता है और स्नेहके कारण सूर्यको देखकर फूल उठता है ॥२१॥

प्रेमकी यह फाँसी कण्ठमें लगनेपर छूटती नहीं। हाँ यदि वह कच्ची हो तो जगतके उपहाससे टूट जाएगी ॥२२॥

स्नेहका रास्ता अगम्य है। हे उद्धव! तुमने उसे जब तक नहीं देखा तब तक ही तुम्हें ज्ञान पसन्द आएगा और योग मीठा लगेगा ॥२३॥

जोग तो तेने जोईए रे, जेनुं मन जगमां भमे,
ते तो अबल अमार रे, चित्त रसियामां रमे ॥२४॥

जेनु मन मामे रे, जोग ते सुखे ग्रहो,
अमो तो एह मार्गु रे, प्रीतमजीशुं प्रीत ग्रहो ॥२५॥

तमारा हरि सघले रे, अमारा तो एक (ज) स्थले,
तमो रीझा जोईरमे र, अमो रीझुं अग्र मले ॥२६॥

प्रभुने अवलोकी रे, चकोरनु चित्त ठरे,
ते प्रकाशने पेखी रे, कहो शु संतोष धरे ॥२७॥

एवां वचन सुणीने रे, ओधवनी भ्रांति टळी,
जोग जंजाल छूटी रे, थयुं मन स्नेहे मळी ॥२८॥

अभिमान मूकीने रे, उद्धव गोपी पाय पड्या,
कहुं (कहयुं) वमा प्रीतमजी रे, निश्चे भेक तमने जड्या ॥२९॥

———

जिसका मन जगमें भटकता रहता है उसको ही योगकी आवश्यकता है। …ारा मन तो अचल है वह सदा अपने रसीले कृष्णमें रममाण है ॥२४॥

जिसका मन योगमें लगता हो वह मुझसे उसे ग्रहण करे। हमारी यही भावना है कि प्रियतमसे प्रीति बनी रहे ॥२५॥

तुम्हारा भगवान तो सर्वत्र है,किन्तु हमारा एक ही स्थानपर है। तुम …दनीको पाकर रीझते हो किन्तु हम तो चन्द्र पाकर खुश होती हैं ॥२६॥

जब चकोरका मन चन्द्रमाको देखकर ही स्थिर होता है तब भला … अन्य किसीके प्रकाशको देखकर क्या सन्तोष धारण करेगा? ॥२७॥

ऐसे वचन सुनकर उद्धवजीकी भ्रान्ति दूर हो गई योगका अभ्यास …ट गया और मन स्नेहसे भर उठा ॥२८॥

उद्धवजी अभिमान छोड़कर गोपियोंके चरणोंमें आ पड़े और कहने …गे कि दयारामके प्रियतम निश्चयपूर्वक अकेले तुम्हें ही मिले हैं ॥२९॥

२१ उधवजी, विचारो रे !

उधवजी विचारो रे, अन्तर आपने,
पण समजे तो देखी रे लोक
जोवा कर कंकण जोईए शीद आरसी,
होय विचार तो पासे परोक्ष   उधवजी०॥टेक॥

तमारो तो हरि व्यापक सर्वत्र छे,
त्यारे कोई अधिक ने ओछा क्यांह,
नित उठी आऊं हुं जाऊं छुं शीद करी रझळा,
एवडुं शुं डाटयुं छे मधुपुरी मांह?   उधवजी०॥१॥

भ्रमर छे लोभी गन्ध कमल ने केतकी,
दूर थकी लावे छे सुगन्धी ग्रही वाय,
तेटलेथी हृदय रञ्जन न थातुं होय तो,
शिवने वेराग शीद कण्टकमां जाय?   उधवजी०॥२॥

वसे दिशा दिशो उद्योत इन्दुतणो,
पण त्यां लगी अमने जोये जाय,
सागर कुमोदादिक फूले तो फूलजो,
पण चित्त चकोरने न उपजे आनन्द   उधवजी० ॥३॥

विचारो तो मनने सोहेल रढ लगनी,
कोण जाणे वदन वपुने शुं वेर,
व्यापकनी साथे करी कहो कोणे वातडी,
वातडी विना ते शी सुखनी ल्हेर?   उधवजी०॥४॥

त्यार लगी दयाळा प्रीतम नथी ओळख्या,
ज्यां लगी सत्य नथी साकार,
रूप रस प्रेमनी पीडा ते त्यारे प्रीछशो,
अनुभव थाशे ओधव कोई वार   उधवजी० ॥५॥

———

२१ ऊधवजी, जरा सोचिए तो

उद्धवजी ! अपने दिलमें विचार तो करो। बिना समझे क्यों सीख देते हो? हाथ कंगनके लिए आरसीकी क्या आवश्यकता है? यदि सोचनेकी शक्ति हो तो उसे अपने पास ही देखो।

तुम्हारा हरी तो सर्वत्र व्यापक है न? उसके लिए कहीं कम और कहीं ज्यादा तो नहीं है? तब फिर वह हररोज 'जाता हूँ जाता हूँ' ऐसा क्यों कहता है? मधुपुरीमें ऐसा क्या गड़ा पड़ा है? ॥१॥

भ्रमर कमल और केतकीको सुगंधका लोभी है न? वह सुगन्ध वायु दूरसे ढोकर ले आती है। पर उससे उसका हृदय तृप्त नहीं होता। इसीलिए वह कंटकोंमें जाकर फँसता है। ॥२॥

वर्षो दिशाओंमें चन्द्रकी चाँदनी फैल गई है। जब तक बादलोंकी आड़में चन्द्र छिपा हुआ है तब तक सागर कुमुदिनि आदि भले ही फूलें परन्तु चकोरके हृदयमें आनन्द उत्पन्न नहीं होता ॥३॥

सोचनेपर मालूम होगा कि मनका सहज खिंचाव रूपके पीछे रहता है। लेकिन न मालूम तुम्हें क्यों मुखड़े और देहसे दुश्मनी है? बताओ तो व्यापकके साथ किसने बात की है? बिना बात किए सुखकी लहर भला कैसे? ॥४॥

जब तक सत्य साकार नहीं होता तब तक दयारामके प्रीतमको नहीं पहचाना जा सकता। उद्धवजी! जब तुम्हें इसका कभी अनुभव होगा तभी तुम इस साकार ईश्वरके रूप-रस-प्रेमकी विरह पीड़ाका पहिचान पाओगे ॥५॥

४२. प्रेमरस

जे कोई प्रेमभक्ति आचरे प्रेम रस तेना उरमां ठरे (टेक)

सिंहण केरु दूध होय ते, सिंहण सुतने ठरे,
कनकपात्र पाखे सहु वस्तु फोडीने नीसरे प्रेमरस ॥१॥

सक्करखोरनु सक्कर खोयम, चरना प्राण न हरे,
खार सिंधुनु मांहमांहे क्यम मोठा जळमां भरे प्रेमरस ॥२॥

सोमवेली रसपान शुद्ध जे ब्राह्मण होय ते करे
बगल बेसीने वमन करावे, वेदवाणी उच्चरे प्रेमरस ॥३॥

उत्तम वस्तु अधिकार विना मळे तदपि अर्थ नां सरे,
मत्स्यभोगी बगलो मुक्ताफळ देखी चंचु नां भरे. प्रेमरस ॥४॥

एम आदि साधने प्रेम विना पुरुषोत्तम पूठ नां फरे,
दया प्रीतम श्रीगोवर्धनधर, प्रेमभक्तिये वरे. प्रेमरस ॥५॥

———

२२ प्रेमरस

जो प्रेमका अंश लेकर अवतीर्ण हुए हैं, प्रेमरस उन्हींके हृदयमें स्थिर रह सकता है।

सिंहनीका दूध सिंहनीके पुत्रको ही हजम हो सकता है। केवल स्वर्णपात्रके सिवा वह (दूध) और किसीमें नहीं रखा जा सकता दूसरी धातुओंके पात्रोंको फोड़कर वह बाहर बह निकलता है ॥१॥

शक्करखोरका भोजन ही शक्कर है परन्तु वही (शक्कर) गधेका प्राण हर लेती है। उसी तरह खारे सागरमें रहनेवाला मत्स्य मीठे जलमें पड़कर मर जाता है ॥२॥

सोमलताका रसपान शुद्ध ब्राह्मण ही कर सकता है। यदि वर्ण संकर उसका पान करे तो वह वमनके द्वारा निकल जाता है यूँ वेद वाणी कहती है ॥३॥

उत्तम वस्तु अधिकारके बिना प्राप्त हो भी जाय तो उसका कोई अर्थ नहीं। मछली खानेवाला बगला मोतियोंको देख लेनेपर भी उनसे अपनी चोंच नहीं भरता ॥४॥

इसी प्रकार, चाहे करोड़ों साधनाएँ क्यों न की जाएँ, परन्तु बिना प्रेमके पुरुषोत्तम भगवान दर्शन नहीं देते। दयाराम कहते हैं कि गोवर्धन धारी प्रीतम भगवान कृष्ण प्रेम भक्तिसे ही वरे जा सकते हैं ॥५॥

---

१३ लोचन मननो झगडो

लोचन मननो रे, के झगडो लोचन मननो,
रसिया ते जननो रे, के झगडो लोचन मननो (टेक)

प्रीत प्रथम कोणे करी मनकुंवरनी साथ?
मन कहे लोचन तें करी, लोचन कहे तारे हाथ झगडो लोचन० ॥१॥

नटवर निरख्या नेन तें, मुख आप्युं तुज भाग
पछी बंधाव्युं मुजने, लगन लगाडी आग झगडो लोचन० ॥२॥

सुण चक्षु हुं पांगळुं, तुं माहारुं वाहन,
निगम अगम क्यांहुं सांभळ्युं, दीठा विना गयुं मन? झगडो लोचन० ॥३॥

भेळुं कराव्यो में तने, सुंदर वर संजोग,
मने तजी तुं नित मळे, हुं पडुं दुःख वियोग. झगडो लोचन० ॥४॥

बनमां वहालाजी कने, हुं वसुं ए सुख नेम,
पण तुजने मळ मेलव्ये हुं मळ भोगवुं चेन झगडो लोचन० ॥५॥

स्नेह थयो मन क्यम तने मेळे श्याम शरीर,
दुःख माहारे आवे जगत, रात दिवस वहे नीर झगडो लोचन० ॥६॥

मन कहे धीकुं दुःखे धूम प्रगट त्यां होय,
ते तुजने लागे रे, नयन, तेहथकी तुं रोय झगडो लोचन० ॥७॥

ए बेहु आव्यां बुद्धि कने, तेणे चुकव्यो न्याय,
मन लोचननो प्राण तुं, लोचन तुं मनकाय झगडो लोचन० ॥८॥

सुखथी सुख दुःख दुःखथी, मन लोचन ए रीते,
दया प्रीतम श्रीकृष्ण शुं बेहुं वधे थी प्रीत झगडो लोचन० ॥९॥

२३ लोचन-मनका झगड़ा

यह तो नयन और मनका झगड़ा है। रसिक जनके लोचन और मनका यह झगड़ा है।

नन्दकुँवरके साथ प्रीति पहले किसने की? मन कहता है कि लोचन! तूने पहले प्रीति की और लोचन कहता है कि जो कुछ किया तेरे साथ रहकर किया ॥१॥

मन कहता है कि नयन! तूने नटवरको देखा और तुझे सुख मिला। बादमें तूने मुझे वहाँ बँधा दिया और अन्दर प्रेमकी आग भड़का दी ॥२॥

चक्षु! सुन मैं तो अपंग हूँ। तू मेरा वाहन है। अगम निगममें क्या कहीं सुना है कि बिना देखे मन कहीं गया हो? ॥३॥

मेरा उपकार है कि मैंने सुन्दर वरके साथ तेरा संयोग करा दिया। तू मुझे छोड़कर उससे नित्य मिलता है और इधर मैं वियोगके कारण दुखी रहता हूँ ॥४॥

नयन! सुन मैं तो वनमें प्रियतमके पास बसता हूँ लेकिन तुझे प्रियतमसे बिना मिलाए मुझे चैन नहीं पड़ती ॥५॥

नयन कहता है —मन, तू नित्य श्याम शरीरसे (नन्दकुँवरजी) से भेंटता है फिर भी तुझे चैन नहीं है! ऐसा कैसे हो सकता है? मेरा दुख तो जगत जानता है मेरे आँसू रात-दिन बहते रहते हैं ॥६॥

मन कहता है —मेरा हृदय जलता रहता है। उससे जो धुआँ उठता है, हे नयन वही तुझे लगता है और उसीसे तू रोता है ॥७॥

तब दोनों बुद्धिके पास आए और उसने न्याय दिया। मन तू लोचनका प्राण है और लोचन तू मनकी काया है ॥८॥

सुखसे सुखी होना और दुखसे दुखी—मन और लोचनकी यही रीति है। दयारामके प्रीतम श्रीकृष्णको दोनों ही बहुत प्यार करते हैं ॥९॥

———

२४ निश्चेनो महेल

निश्चेना महेलमां, वसे मारो वहालमो,
वसे व्रजलाडीलो, जेरे नाम ते मांडी पामे है
मूल्या भमे ते बीजा सदनमां शोधे रे,
हरि नां मले एको ठामे रे निश्चे० ॥१॥

सतसम देशमां भक्ति नगर छे रे,
प्रेमनी पोल पूछी जा जो रे,
मोहे ताप पोलीमाने मली मोहोले पेसजो रे,
सेवा सीडी चढी ज मेलो चाबो रे, निश्चे० ॥२॥

दीनता-पायमां, ममममि मूकी मे,
मेठ भगवन्तजीने करजो रे,
हुं भाव पु भाव नोछावर करीने,
श्रीगिरिधरवर तमो वरजो रे निश्चे० ॥३॥

एरे मध्यायनुं मूल हरि इच्छा रे,
कृपा विना सिद्धि नां पाये रे,
पण श्री वल्लभ शरण थकी सहु पडे सेहेलु रे,
दैवी जन प्रति हमो पामे रे निश्चे० ॥४॥

———

२४ निश्चयका महत्त्व

मेरा बालम दृढ़ निश्चयके महलमें निवास करता है। वहीं रहता है सब छोड़कर! जो वहाँ उसके पास जाता है उसे उसके दर्शन होते हैं। जो भूले हुए हैं वे उसकी खोजमें दूसरे सदनोंमें भटकते रहते हैं। किन्तु हरि उन्हें एक भी जगह नहीं मिलता ॥१॥

सत्संग नामक देशमें भक्ति नामका नगर है। उसमें जाकर प्रेमकी गली पूछना। विरह-ताप-रूपी पहरेदारसे मिलकर महलमें घुसना और सेवा रूपी सीढ़ीपर चढ़कर नजदीक पहुँच जाना ॥२॥

फिर दीनताके पात्रमें अपने मनकी मणिको रखकर उसे भगवानकी भेंट चढ़ा देना। अहं तथा ममत्वके भावोंको न्यौछावरकर तुम श्री गिरिधरको वरण करना ॥३॥

हरिकी इच्छा प्रत्येक कार्यारम्भका आधार है। उनकी कृपा बिना सिद्धि नहीं मिलती। लेकिन श्री वल्लभकी शरणमें जानेसे सब बातें सरल हो जाती हैं यूँ भक्तजनोंके लिए दयाराम गाता है ॥४॥

२५. मारुं छणकतुं ढोर

मारु छणकतुं ढोर छणके छे सहु मघमां,
सीम खेतर खळुं कांई न मूके,
ना आवुं जाय त्यांहां, ना लावुं जाय ते,
रखडवुं नित्य तेहेमां न चूके मारु० (टेक)।

वाली लावु घेर ने गोलुं मांडुं गल्युं,
खीलुं मीठडुं पण ते न सूंघे,
पेसी राडांनो घास कयहु कुसका,
मार खाई ने पण ते न चूंथे मारु० ॥१॥

हेवसो होडेरडो मारो मान्यो नहीं,
पणु हरत्युं, हावो हु तो हार्यो,
वस मारे नथी तदपि मारुं कहाव्युं,
माटे एहुं छुं भयभीत चिंतानो मार्यो मारु० ॥२॥

हे गुरु! हे गोपाल! में अर्प्युं ए आपने,
दया करी राखों निज पासे मागुं
साधुपणुं शीखवी वृन्दावन चारजो,
कलेस मारा टळे पाय लागुं मारु० ॥३॥

हे हृषिकेश ए कलेश मुज मनतण तणा,
आप टाळो, करो सुख साचुं,
स्मरण सेवन बने अहर्निश आपनुं,
अचल आनन्द माणे, एह जाचुं मारु० ॥४॥

मन मति बगडतां सब कांई बगडियुं,
करवुं बहु माधवजी! दया आणो,
जन दयाना प्रीतम श्री गोवर्धनधरण,
करुणाद्रष्टे जुओ, निज नो जाणो मारु० ॥५॥

———

२५ मेरा आवारा ढोर

मेरा आवारा ढोर सारे नगरमें भटकता है। जयल खेत खलिहान किसीको नहीं छोड़ता। जहाँ नहीं जाना चाहिए वहाँ जाता है जो चीज नहीं खानी चाहिए, खाता है। वह नित्यका भटकना नहीं छोड़ता।

उसे घेर घारकर घर लाता हूँ और मीठी चीजें खानेको देता हूँ। लेकिन वह हरे चारे तकको भी नहीं सूँघता। मारनेपर भी वह घासका करब और भूसा खाता है ॥१॥

रोकने थामनेपर भी मेरी बात नहीं मानता। ऐसा आवारा हो गया है वह! अब तो मैं हार गया हूँ। वह मेरे वशमें नहीं आता पर कहलाता मेरा ही है। इसलिए मैं चिन्ताके मारे भयभीत रहता हूँ ॥२॥

हे गुरु! हे गोपाल! मैंने इसे आपको अर्पित कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि आप इसे अपने वशमें करके अपने ही पास रखिए। इसे साधुत्वकी शिक्षा देकर वृन्दावनमें चराइए, जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ ॥३॥

हे हृषीकेश मेरे मन-तनके इस क्लेशको दूर करो इसे शुद्ध और सच्चा बनाओ। रात दिन आपका स्मरण सेवन होता रहे और उसीमें अचल आनन्दकी अनुभूति हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥४॥

मनके बिछड़ हो जानेसे सब कुछ बिगड़ जाता है इसलिए हे नाथ बहुत डर लगता है। अपने दास पर दया कीजिए। हे दयारामके प्रियतम गोवर्द्धनधारी भगवान करुण दृष्टिसे मेरी ओर निहारिए। मुझे अपना ही मानिए ॥५॥

———

६६ भटकतां भवमां रे

भटकतां भवमां रे, गया काल कोटि वही,
हद थई छे हावां रे, राखो हरि हाथ ग्रही ॥टेक॥

आव्यो शरण त्रितापनो बाळ्यो, शीतळ कीजे श्याम,
करगरी कहुं छुं कृष्ण कृपानिधि ! राखो चरण सुखधाम,
करुणा कटाक्षे रे, किल्बिष कोय नहीं भटकतां० ॥१॥

जो मारा दूषण सामुं जोशो तो ठरशो बराबरी,
रज गुंजा क्यम होय समतोल, हुं तो रंक ने तमे हरि,
माटे मम मोटुं रे, करो मुने रंक सही भटकतां० ॥२॥

आशा भर्यो आव्यो अविनाशी, समर्थ सही तम पास
धर्म धुरन्धर तम द्वारेथी हुं केम जाउं निराश,
शिशुनो करी लो रे "मा" तो मुने कहेशो नहीं भटकतां० ॥३॥

अरज सांभळो अनाथ जन-नी अबळो श्री रणछोड,
एक वार सन्मुख जुओ शामळा पहोंचे मननां कोड,
हसी ने बोलावो रे, थया तुं तो मारो सही भटकतां० ॥४॥

---

२६ भवमें भटकते

इस संसारमें भटकते हुए करोड़ों युग बीत गए। अब इसकी हद हो गई। हे हरि हाथ पकड़कर रक्षा करो।

हे श्याम! मैं त्रितापका जला हुआ तुम्हारी शरण आया हूँ मुझे शीतल करो। कृपानिधि कृष्ण! हाथ जोड़कर कहता हूँ आप अपने सुखधाम चरणोंमें मुझे स्थान दो। आपके करुणाकटाक्षसे पापोंका काप जल जाता है ॥१॥

यदि मेरी करनीकी ओर देखोगे तो यह मुझसे बराबरी करना होगा। रत्न और घुँघचीकी तुलना कैसी? मैं तो रंक हूँ और तुम भगवान हो। इसलिए मुझ जैसे रंकको अपनाकर उदार बनो ॥२॥

हे अविनाशी! मैं समर्थ देखकर आपके पास आशा लेकर आया हूँ। हे धर्म धुरन्धर! मैं तुम्हारे द्वारसे निराश कैसे वापस जाऊँ? तुम मुझे अपना लो। ना तो कहना ही मत ॥३॥

श्री रणछोड़! अपने कानसे मुझ अभाग जनकी प्रार्थना सुन लो। हे श्याम! एक बार मेरी ओर देख लो मनके अरमान पूरे हो जाएँ। 'दयाराम तू मेरा है —यू कहकर हँसकर बुलाओ न! ॥४॥

२७ मूकशो मा

मारे मस्त सभे मनमेला, मुजने मूकशो मा,
मारा मदनमोहनजी छेला अवसर चूकशो मा ॥१॥

हरि! हुं वेचो लेवो तमारो, मुजने मूकशो मा
श्रीगुरु सोंप्यो सम्बन्ध विचारो, अवसर चूकशो मा ॥२॥

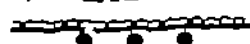
मारा दोष कोष समारी मुजने मूकशो मा,
शरणागतवत्सल गिरिधारी, अवसर चूकशो मा ॥३॥

हरि! मारे धर्म नथी कोई साधन, मुजने मूकशो मा,
नथी सत्संग स्मरण आराधन, अवसर चूकशो मा ॥४॥

श्रीपति सर्वात्मा सर्वोत्तम मुजने मूकशो मा,
मारा प्राणजीवन पुरुषोत्तम, अवसर चूकशो मा ॥५॥

समय करुणासिंधु श्रीजी, दयाने मूकशो मा,
मारे ओथ नथी कोई बीजी, अवसर चूकशो मा ॥६॥

२७ छोड न देना



मेरे अलबेले प्रभु ! मुझे अन्त समय छोड़ न देना। मेरे भवन-
नजी, अन्तिम अवसरपर चूकना नहीं ॥१॥

हे हरि ! मैं जैसा हूँ तेरा ही हूँ। मुझे छोड़ न देना। श्री गुरुने
आपको सौंपा है इस सम्बन्धपर विचार करना और अवसर मत
जाना ॥२॥

मेरे दोषोंके समूहको याद करके मुझे छोड़ न देना। हे शरणागत-
छ गिरधारी अवसर चूक मत जाना ॥३॥

हे हरि ! मेरे पास धर्म-कर्मका कोई साधन नहीं है मुझे छोड़
देना। मैंने सत्सग स्मरण आराधन कुछ नहीं किया है। इसलिए,
सर मत चूक जाना ॥४॥

हे श्रीपति सर्वात्मा सर्वोत्तम मुझे छोड़ न देना। मेरे प्राण-
वन पुरुषोत्तम अवसर चूकना मत ॥५॥

समर्थ करुणासिन्धु, श्री जी ! दयाधामका छोड़ना नहीं। मेरा
ई दूसरा सहारा नहीं है, इसलिए अवसर मत चुकाना ॥६॥



३८ मनजी मुसाफर ने

मनजी ! मुसाफर रे !! चालोने निज देश भणी,
मुल्क घणा जोया रे, मुसाफरी थई छे घणी (टेक)

स्वपुर जवानो पन्थ आव्यो छे, रखे भूलता भाई
फरीने आ मारग मळवो छे नहीं, एवी छे अवळाई,
माटे समजी चालो सुधारो, नो जोशो डाबा के जमणी ॥१॥

पांचे फांसीआ वाट मारवाने, बेठा छे बे चार,
माटे वळावा राखो बे जण के, त्यारे तेनो नहीं भार,
मळ्यो छे एक भेरु रे, बतावी गति सौ ते तणी ॥२॥

माल वहोरीले पहोरी शेठमा नामनो, बे रुपुं मां थाय अटकाव,
आपणो करतो जोखम आवे, लागे चाणीनो दाव–
माटे एटला सार रे, नो थाई वहोरतना धणी. ॥३॥

जो जो जुगत करीने चालुं मे, करजो सम्भालीने काम,
दास दयाने एम सुझे छे, हावां जईए पोताने धाम
सुझे छे हावां एवुं रे, अवसर थई छे आपणी ॥४॥

२८ मन मुसाफिरको

रे मन! ओ मुसाफिर!! अपने देशकी ओर चलो म!
अब तक कई मुल्क देख डाले बहुत-सी मुसाफिरी हो गई।

अपने नगरका रास्ता आ गया है यह भूल न जाना। फिर-फिर यह मार्ग नहीं मिलेगा। इसलिए सोच-समझकर ठीक-ठीक चलो। दाएँ-बाएँ मत देखो ॥१॥

रास्तेमें चो-चार बटमार बैठे हुए हैं अत साथमें दो-तीन रक्षक ले लो। फिर इन बटमारोंकी कोई बिसात नहीं। एक भेदिया मिल गया है जिसने उन सबकी गतिविधिका परिचय दे दिया है ॥२॥

जो कुछ खरीदो वह सेठके नामसे खरीदो ताकि कहीं रुकावट न आए। अपना कहनेमें जोखिम है, चुंगीवालेका दाँव लग सकता है। इसलिए खरीदके मालिक मत बनना ॥३॥

ध्यान रखना कि चुगल करके तरकीबसे जाना है, इसलिए सम्हलकर काम करना। दास दयारामको यह सूझ रहा है कि अब अपने धाम चलना चाहिए। ऐसा लगता है कि अपनी अवधि पूरी हो गई है ॥४॥

---

५५. तादृशी जन

तादृशी जन तेने जाणीए रे, जेमां एवा गुण होय रे,
निंदास्तुति नां करे कोईनी, सघळे समदृष्टे जोय रे। (टेक)

दर्शन करतां मात्र मां रे, भूलावे प्रपञ्चनुं भान रे,
स्मरण करावे श्री कृष्णनुं, मसाडे अघ अज्ञान रे. तादृशी ०॥१॥

सकल चराचरने विषे रे, जस्या देखे भगवान रे,
भ्रम टळ्यो सरव जगतनुं, लेश नहीं अभिमान रे तादृशी ०॥२॥

गुण गातां गोविंदना रे, पुलकित तनु थाय रे,
नेत्रे प्रवाह वहे प्रेमना, हरखे हृदय उभराय रे तादृशी ०॥३॥

परदुःखे दाझे घणुं रे, करे कोईनो ना द्रोह रे,
इंद्रियजित साधा सदा, ना पामे मायामां मोह रे तादृशी ०॥४॥

अकल लीला मनलालसी रे, तेमां लग्न जेनुं मन रे,
प्रीत बहु पर उपकारमां, सदा प्रसन्न वदन रे तादृशी ०॥५॥

मत्सर सघळो मेलमां रे, कान्ति करुणामय होय रे,
शान्त स्वभाव संतोष बहु, दोष कोईना न जोय रे तादृशी ०॥६॥

२९. प्रभुमय

उसे ही प्रभुमय मानना चाहिए जिसमें ये गुण हों वह किसीकी निन्दा-स्तुति नहीं करता है, सर्वत्र समदृष्टिसे देखता है।

उसके दर्शन-मात्रसे सभी प्रपञ्च भूल जाते हैं श्रीकृष्णका स्मरण होने लगता है तथा पाप और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं ॥१॥

वह समस्त चराचरोंमें भगवानको उपस्थित मानता है और सम्पूर्ण जगतके शुभ की इच्छा करता है उसमें अभिमान लेश मात्र भी नहीं रहता ॥२॥

गोविन्दका गुणगान करते-करते उसका शरीर पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे प्रेमका प्रवाह बहने लगता है तथा हृदय हर्षसे रुँध जाता है ॥३॥

वह दूसरोंके दुःखसे खूब दुःखी होता है लेकिन स्वयं किसीका द्रोह नहीं करता है। वह सदा सच्चा जितेन्द्रिय रहता है तथा मायासे मोहित नहीं होता है ॥४॥

नन्दलालकी गूढ़ लीलाओंमें उसका मन तल्लीन रहता है। वह परोपकारमें बहुत प्रीति रखता है और सदा प्रसन्न-वदन रहता है ॥५॥

उसके नेत्रोंमें मटवर झलकता रहता है तथा शरीरमें करुणा झाँकती है। वह शान्त स्वभाववाला तथा अत्यन्त सन्तोषी होता है और किसीमें कोई दोष नहीं देखता है ॥६॥

३० चित्त ! तुं शीदने चिंता धरे ?

चित्त ! तुं शीदने चिन्ता धरे ? कृष्णने करवुं होय ते करे

स्थावर जंगम जड चैतन्यमां, मायानुं बल ठरे,
समरण कर श्रीकृष्णचन्द्रनुं, जन्म मरण भय हरे   कृष्णने०॥१॥

नव मास प्राणी कृष्णचन्द्रनुं, ध्यान गर्भमां धरे,
मायानुं आवरण कर्युं त्यारे, लखचोराशी फरे   कृष्णने०॥२॥

तुं अंतर उद्वेग धरे तेथी कारज शुं सरे ?
ए धणीनो धार्यो मनसुबो, हर ब्रह्माथी ना फरे   कृष्णने०॥३॥

छे दोरी सरवनी एने हाथ सहु भरायुं डगलुं भरे,
जेवो जन्त्र बजावे जन्त्री, तेवो स्वर नीसरे   कृष्णने०॥४॥

तारे कर्युं जो थातुं होत तो, सुख संची दुःख हरे,
आपणुं अज्ञान फल ए मूक विचारे खरे   कृष्णने०॥५॥

तारे कीधुं थाय तेटलुं, हरि इच्छा अनुसरे,
सदा काल ते रीत गमे नहीं, धीर हृदय मन धरे   कृष्णने०॥६॥

३० चित्त! तू क्यों चिन्ता करता है?

चित्त, तू चिन्ता क्यों करता है? कृष्णको जो करना हो करे।

स्थावर जगम, जड, चेतन सभीमें मायाका वस दिखाई देता है। तू श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण कर जिससे जन्म-मरणका भय हट जाए ॥१॥

प्राणी नव मास तक गर्भमें कृष्णचन्द्रका ध्यान करता है लेकिन जब उसपर मायाका आवरण पड़ता है तो वह चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता है ॥२॥

तू अपने हृदयमें व्याकुल होता है इससे भला क्या होगा? उस स्वामीकी इच्छाको विष्णु और शिव भी नहीं पलट सकते ॥३॥

उसके हाथमें सबकी नकेलें हैं। सभी उसकी इच्छानुसार कदम उठाते हैं। यन्त्री (बजानेवाला) जैसा बजाता है वैसा ही स्वर बाजेमेंसे निकलता है ॥४॥

यदि तेरा किया हुआ ही होता तो तू सुखको सञ्चित करके दुःखोंको नष्ट कर देता। हमारा अभिमान हमारे अज्ञानका फल है—इस मूल बात पर विचार कर ॥५॥

तुम्हारा किया उतना ही होता है जितना कि हरि चाहता है। सदासे ही यह रीति चली आ रही है। तू अपने मनमें अहंकार क्यों करता है? ॥६॥

जेवुं बेठलु ब्यम जे काले, से तेमे कर ठरे,
कोईभी फेर पडे नहीं तेमां, भामे छूटी मरे कृष्णने०॥७॥

बावानुं एणी पेरे पासे, ब्यम मीफल पायो मरे
बावानुं एणी पेरे मासे, ब्यम गज कोठुं गरे कृष्णने०॥८॥

(माटे) बावानुं मन कीम पासे, उपनिषद ऊमरे,
(तुं) राम मरोंसो रामावरमो, शा माटे बया करे? कृष्णने०॥९॥



जिस कालमें जितना पैसा और जिस तरह होना लिखा है वैसा ही होता है। इसमें किसीके कुछ करनेसे फर्क नहीं पड़ता तब तुम क्यों मायापच्ची करके मरते हो ।।७।।

जो होनेवाला है वह उसीकी प्रेरणासे होता है जिस प्रकार कि नारियलमें पानीका भरा जाना। जो बात जानेवाली होती है वह उसीकी प्रेरणासे चली जाती है, जैसे हाथी अपनी सूँड़से कोठा (एक प्रकारका फल) निगल जाता है ।।८।।

उपनिषद् पुकारकर कहते हैं कि जो होनेवाला है वह अपने आप होगा। रघुवरपर भरोसा रख दयाराम डरता क्यों है? ।।९।।
